॥ साधना ॥

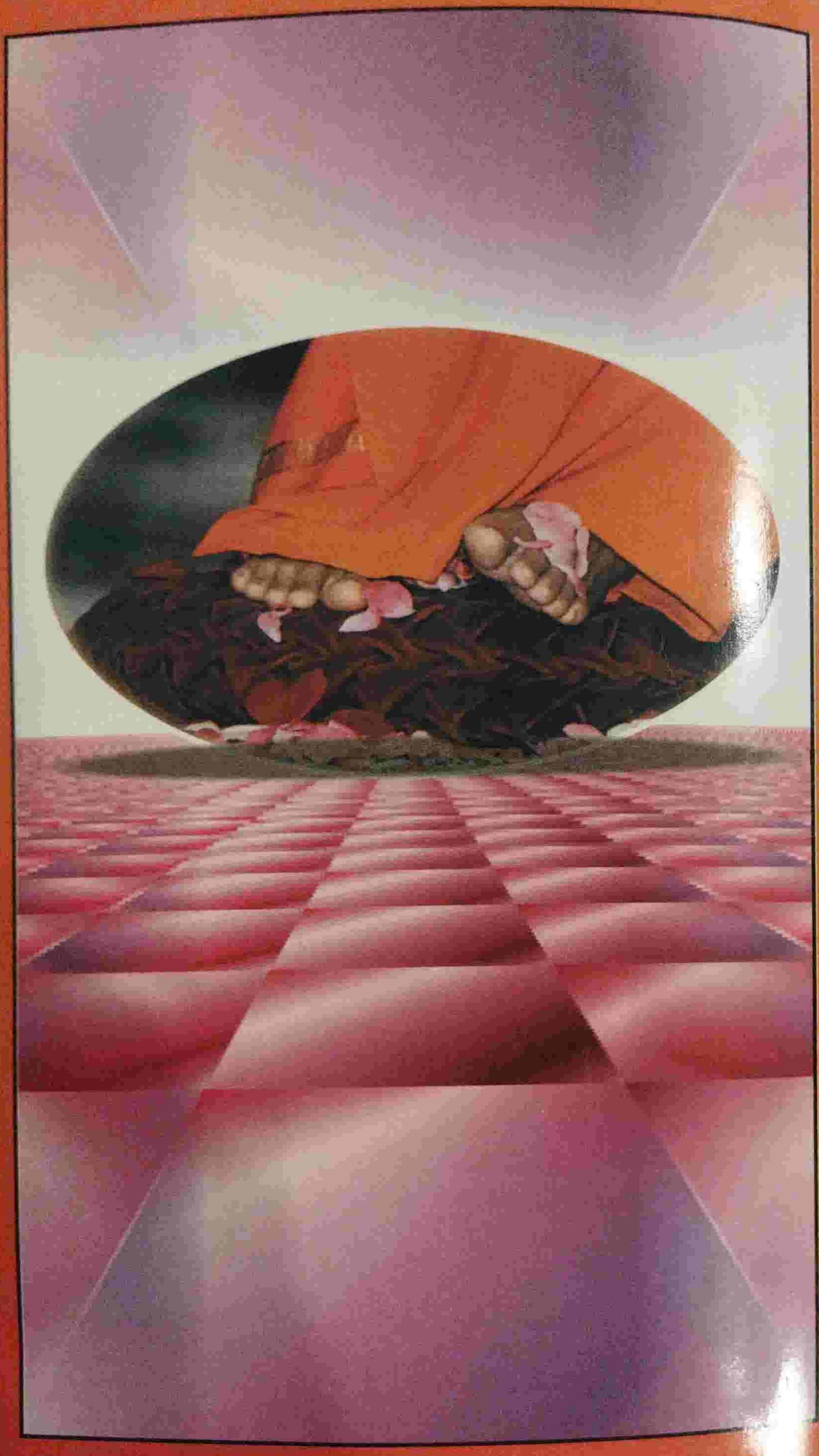

ॐ श्री साई गणेशाय नमः

ॐ श्री साई शंकराय नमः

ॐ श्री साई दीनजनपोषणाय नमः

ॐ श्री साई करुणायकराय नमः

ॐ श्री साई आदिशक्तये नमः

ॐ श्री साई प्रेमप्रदाय नमः

ॐ श्री साई साई ज्ञानसिद्धिदाय नमः

ॐ श्री साई पुराणपुरुषाय नमः

ॐ श्री साई संसार दुःख क्षयकराय नमः

ॐ श्री साई संकलसंशयहराय बोधकाय नमः

ॐ श्री साई सर्वसिद्धिप्रदाय नमः

ॐ श्री साई आर्तिहराय नमः

ॐ श्री साई शान्तमूर्तये नमः

ॐ श्री साई सुलभ प्रसन्नाय नमः

ॐ श्री साई भगवान श्री सत्य साई बाबाय नमः

''रजिन्द्रर सिंह सीप'' जी द्वारा लिखित ''साधना'' पढ़ने का अवसर मिला। उनकी इस इच्छा से मैं सहमत हुआ कि यह पुस्तक के रूप में छप जाये। इस प्रयास में मैं उनके साथ हूँ। भगवान ''बाबा'' से प्रार्थना है कि वे भी अपना आशीर्वाद प्रदान करें और पुस्तक छपने उपरान्त पाठकों को लाभान्वित करें। भगवान से यह भी प्रार्थना है कि वे लेखक को इस क्षेत्र में और भी क्षमता प्रदान करें ताकि ये समाज की अधिक से अधिक सेवा कर सकें।

वी. कपूर
प्रधान
श्री सत्य सांई बाबा सेवा संस्था, पंजाब

प्रियवर राजेन्द्र सिंह जी,

आपने ''साधना'' का प्रतिपादन कर वास्तव में उन आध्यात्मिक पथ के पथिकों के लिये बहुत ही सरल पथ प्रदर्शित कर दिया है।

इसकी शैली और शब्दावली सहज ही हृदयंगम हो जाती है। निश्चय ही जनमानस का ''साधना'' द्वारा कल्याण होगा।

कालीचरण सूद
स्वतन्त्रता सेनानी
प्रधान
गायत्री सत्संग सभा
फगवाड़ा

साधना

First Edition July 2005

All Rights Reserved

WRITER

Rajinder Singh Seep

SAI COTTAGE

Moh. ThaneDara, Mehli Gate

Phagwara— 144 401 (Pb.) India

Phone :- 01824– 264954, 263042

E-mail- rajinderseep@yahoo.com

Proof Reading by :

Mr. Harivansh Gautam

Printed by :-

Ashwani Sharma

Adarsh Nagar, Phagwara

Mobile :- 98157-40266

ॐ साईं राम

पुस्तकें हमें ज्ञान प्राप्त करने के मार्ग को प्रशस्त करती हैं। हमारे मन में उठने वाली विभिन्न शंकाओं को शान्त करती हैं। हमें सत्य का आभास करा देती हैं। उसके गुणों से परिचित कराकर हमें मार्ग पर अग्रसर होने की प्रेरण देती हैं। प्रस्तुत पुस्तक 'साधना' में ''श्री रजिन्द्र सिंह सीप'' ने भगवान बाबा की कृपा से विभिन्न दार्शनिक एवम भौतिक प्रश्नों का रहस्योद्घाटन किया है। हमारी भगवान के श्री चरणों में यही प्रार्थना है कि इस हीरे को इसी तरह चमकता रखे। और यह हीरा इसी तरह मानव जाति के मार्गदर्शन के लिए और भी अच्छी पुस्तकें लिखें।

Sh. Satya Sai Sewa Samiti,
Phagwara
Vijay Shangari
Convener

पुस्तक के बारे में

जो भी व्यक्ति इस दुनिया में आता है उम्र भर महत्वाकांक्षी रहताहै। जीवन भर उसकी कामनाएं खत्म नहीं होतीं। अपने जीवन काल में उसकी जो सबसे इच्छित कामना होती है, वह है सुखी जीवन व्यतीत करने की बचपन की दहलीज से जैसे ही वह कदम बाहर रखता है उसे सब तरफ से समझाने वाले मिलने लगते हैं। उसको शिक्षित करते हैं। और सबकी शिक्षा एक ही होती है कि हे मानव तुमने एक सुखी जीवन व्यतीत करना है। सुख प्राप्ति तेरा जन्म सिद्ध अधिकार है और तुझे अपने अधिकार को हर हाल में प्राप्त करना है। फिर वह व्यक्ति सारा जीवन सुख को प्राप्त करने में और सुख प्राप्ति के साधन जुटाने में लगा रहता है।

लेकिन जो बात प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष नजर आती है वह बहुत चौंकाने वालीहै। मनुष्य अपने यत्नों से जितने भी साधन जुटाता है या तो उनसे सुख मिलता नहीं अगर मिल भी जाता है तो थोड़ी देर बाद वह सुख भी दुख में बदल जाता है। क्योंकि वह जितनी कोशिश करता है असफल होता जाता है इसलिए उसे हर रोज नये ढंग से नये विचार से कोशिश करनी पड़ती है, इसी कोशिश में कभी वह दोस्तों की चाहना करता है तो कभी खेल कूद की। कभी माता पिता की तो कभी भाई बहनों की। कभी पत्नी को तो कभी बच्चों की। कभी धन दौलत तो कभी जमीन जायदाद की। कभी किसी को सुख देकर अपना सुख ढूंढता है तो कभी किसी को दुख दे कर। कभी खुद को दूसरों से बेहतर समझ कर तो कभी बहुत दीन-हीन व तुच्छ सा महसूस करके। कभी साधु सन्तों का संग करके, कीर्तन कथा सुन करके तो कभी महफिल के रंगीन गीत व संगीत से। कभी हिंसा से तो कभी अहिंसा से। उम्र गुजर जाती है, मौत का फरिश्ता करीब आ कर बैठ जाता है लेकिन मनुष्य सुख विहीन ही रहता है।

ऐसा क्यों होता है ? इसका उत्तर ढूंढने से पहले एक उदाहरण द्वारा इस सारी उलझन को समझने की कोशिश करते हैं। रामायण में (श्री राम चरित्र मानस) एक पंक्ति आती है कि

सुखी मीन जहां नीर अगाध।

जिसका अर्थ है कि मछली अधिक से अधिक जल राशि में रह कर ही सुखी रह सकती है।

इस सम्बन्ध में एक प्रसंग आता है एक बार एक मछली सागर में तैरती हुई लहरों के साथ किनारे तक आ गई। किनारे पर कुछ लोग यही चर्चा कर रहे थे

कि मछली का सुख जल राशि पर ही निर्भर होता है, जितना जल अधिक होगा मछली को उतना ही सुख प्राप्त होगा। मछली थोड़ी ही देर में लहर के साथ पुनः सागर में पहुँच गई लेकिन अब उसे उन लोगों की बात सताने लगी। वह सोचने लगी कि बाहर जो मानव बातें कर रहे थे शत प्रतिशत सही हैं और उसे यह इच्छा होने लगी कि क्यों न वह जल की अपार राशि को ढूंढ ले। यद्यपि वह सागर में ही थी और सब जानते हैं कि सागर से अधिक बड़ा जल का भण्डार और कोई नहीं होता लेकिन भ्रम के वश हो गई और सोचने लगी कि बेशक मैं पहले ही से बहुत बड़ी जल की राशि के बीच में हूँ लेकिन इस जल का कोई तो स्रोत होगा कहीं से तो आता होगा यह जल और जहां से भी आता है वहां कितना बड़ा भण्डार होगा इतना बड़ा शायद इससे भी ज्यादा, और वह सागर के स्रोत की तलाश में निकल पड़ी। तलाश करते करते एक दिन वह मछली ऐसी जगह पर पहुँची जहां से एक नदी सागर में प्रवेश कर रही थी। मछली ने सोचा कि यही तो वो स्थान है जहां से सागर को पानी मिलता है और जब सागर में इतना पानी है तो उस जगह में कितना होगा जहां से यह सारा पानी आ रहा है। मछली नदी में प्रवेश कर गई और वह नदी की धारा के उलट तैरने लगी बहुत से लोग इस बात को जानते हैं कि अक्सर मछलियां नदी की धारा के उलट तैरने लगती हैं उनका यह भी एक कारण है।

मछली को तो अब भी कहां चैन था, वह तो स्रोत तक जाना चाहती थी और इसी सफर में वह फिर एक ऐसी जगह पहुँच गई यहां पर दूसरी एक छोटी नदी उस बड़ी नदी में प्रवेश कर रही थी मछली ने फिर वही समझा और वह छोटी नदी में प्रवेश कर गई। फिर धारा के उलट तैरने लगी। इस सफर में एक ऐसा स्थान आया यहां पर वर्षा के कारण एक तालाब का पानी ज्यादा भर जाने पर छोटी नदी में आ रहा था। मछली फिर धोखा खा गई और वह छोटे से तालाब में पहुँच गई। थोड़ी देर बाद वर्षा बन्द हो गई तलाब में पानी कम होने लगा तालाब का सम्पर्क उस छोटी नदी से टूट गया, मछली वही तालाब में फँसी रह गई। मौसम के बदलाव के साथ तालाब का पानी सूख गया और पानी की कमी के कारण मछली असहनीय दुखों को झेलती हुई अन्ततः मर गई।

हमारी हालत इस मछली से भिन्न कहाँ है ? बिल्कुल नहीं। हम भी सुख की तलाश में हैं, ईश्वर की तलाश में है। सत्य को जानते नहीं, जो पास है उसे छोड़ दूसरी तरफ भागते हैं दूसरी तरफ भागे नहीं कि विषयों में लिप्त हुये और अन्ततः इन्हीं विषयों में लिप्त रहते हुए एक अन्धकारमय जीवन जी कर मृत्यु को प्राप्त

हो जाते हैं।

सत्य को हमें जानना ही होगा। सत्य यह है कि ईश्वर हमारे भीतर है सत्य यह है कि सुख हमारे भीतर है। बाहर कहीं नही जाना, बाहर कुछ नहीं है। वास्तव में ईश्वर का, सत्य का कोई स्रोत नहीं होता। सच्चाई तो यह है, कि जैसे सागर समस्त जल भण्ड़ारों नदी दरियाओं का स्रोत है, कारण है उसी तरह ईश्वर ही समस्त चराचर का स्रोत है कारण है। जिस समय हम इस सच्चाई को जान जाऐंगे, उसी समय हम सुख को प्राप्त हो जायेंगे। और यह सुख क्षणिक नहीं होगा। उम्र भर रहने वाला होगा।

मानव को अपने जीवन में सदैव रहने वाला सुख कैसे प्राप्त हो उसी के सन्दर्भ में यह एक तुच्छ प्रयास है।

साधना क्या है ? सुखी जीवन कैसे जीया जा सकता है! ये कुछ सवाल थे, जो मुझसे मेरी छोटी बहन ने पूछे थे, फिर उसी के जबाव हेतु मैंने उसे यह 'साधना' शीर्षक के नीचे लिख कर देना शुरू किया। मुझे खुद न तो यह इच्छा थी कि मैं इस तरह का कुछ लिखूँ और न ही ऐसी आशा थी, कि मैं ऐसा कुछ लिख पाऊंगा। यह तो लिखते लिखते ही मुझे एहसास हुआ, कि ईश्वर की प्रेरणा व कृपा से कुछ सही दिशा में लिखा जा रहा है। लिखे जाने उपरान्त यह इच्छा हुई कि क्यों न इसे एक किताब में परिवर्तित कर दिया जाए।

अब भी उसी ईश्वर की जब इच्छा होगी तो किताब के रूप में भी छप जाएगी। और अगर यह किताब छप जाती है तो मेरे लिए एक अनोखी घटना ही होगी।

मेरे जीवन में यह एक ऐसा मुकाम होगा जिसकी मैंने कभी कल्पना भी न की थी। उसे मैं सिर्फ अपने आराध्य ''भगवान श्री सत्य साई बाबा जी'' की असीम कृपा ही मानूँगा उनके द्वारा दिया गया दिव्य प्रसाद ही मानूंगा। उनके द्वारा किये गये असंख्य चमत्कारों के साथ-साथ इसे भी उन्ही का चमत्कार ही मानूंगा। यह किताब लिखी गई इसमें न तो मेरी बुद्धि का ही उपयोग है न ही हृदय का। यह किताब लिखी गई इसके लिए न तो मैंने कोई शास्त्र अध्ययन किया, और न ही कोई शिक्षा प्राप्त की। इसे लिखने हेतु न तो मैंने कोई योग किया, और न कोई ध्यान किया। किसी भी स्तर पर किसी भी तरह का प्रयास मैंने नहीं किया। मैने तो यह विचार भी न किया था कि मैं कुछ इस तरह का लिखूँ।

हाँ यहां मैं एक विशेष चर्चा जरूर करूँगा, जिसके बिना मैं खुद को अकृतघन समझूंगा और अपने आप को कभी क्षमा नहीं कर पाऊंगा।

श्री सुरेन्द्र नाथ जी भसीन जो कि बड़ा पिंड गौराया के निवासी थे, हमारे श्री ''सत्य सेवा समिती फगवाड़ा'' के एक मात्र मार्ग दर्शक थे। लगभग 14-15 वर्षों तक उन्होंने समिती की सेवा की। पेशे से इंजीनियर होने के बावजूद गीता-रामायण-उपनिषद् व वेदों के पूर्ण ज्ञाता थे। मेरे इष्ट भगवान श्री सत्य साई बाबा जी ने एक ऐसा संयोग बनाया कि श्री भसीन जी मेरे साथ हमारे घर लगभग एक वर्ष तक रहे। इतने ही समय में उन्होंने मुझे वो सब जानकारी दी जिसे जान कर मनुष्य आत्म ज्ञानी कहलाता है। आध्यात्मिक कहलाता है। आज वो इस संसार में नहीं हैं, लेकिन परलोक से भी मुझे उनका आशीर्वाद प्राप्त हो रहा है और मेरा सिर उनके चरणों में झुका हुआ है। और मैं नत मस्तक हूँ - मेरे पिताजी सरदार सोहन जी और माता सत्या जी के चरणों में भी जिनके आशीर्वाद और सुसंस्कारों के कारण मुझे सब सरलता से प्राप्त हो गया।

श्री कालीचरण जी सूद संचालक गायत्री सतसंग सभा का भी इस पुस्तक के लेखन में भी कम योगदान नहीं है। मुझे जितनी भी जानकारी है उसमें इस गायत्री सत्संग सभा की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण है। श्री भसीन जी द्वारा बताई व समझाई गई बातों की इसी सभा में आ कर मुझे पुष्टि हुई। इस पुस्तक के छपने से पहले सिर्फ कालीचरण सूद जी ही एक मात्र इन्सान हैं जिनसे मैंने इस पुस्तक की पूर्ण चर्चा की है। और उनका आशीर्वाद प्राप्त कियाहै। मैं सदा सदाश्री कालीचरण सूद जी का भी आभारी रहूँगा ।

अंत में मैं इस पुस्तक को अपने परम प्रिय ''भगवान श्री सत्य श्री साई बाबा जी'' के चरण कमलों में भेंट करता हूँ और आभार प्रकट करता हूँ कि उन्होंने अपना यह काम मुझसे करवाया। मैं तो उनके हाथों में एक औजार मात्र हूँ। क्या करना था, क्या नहीं करना था! यह मेरी नहीं, उनकी इच्छा थी। अत: यह उनकी इच्छा ही फलीभूत हुई है।

मुझे नहीं मालूम इससे किसी को कोई लाभ होने वाला है या नहीं। मैं तो इतना ही कहता हूँ, कि हे दया मया! मुझसे बस इतना काम करवा कर ही मुझे विश्राम के लिये अलग न बिठा देना, मुझे तुम अपने कार्यों में सदैव लगाए रखना लगाए रखना।

रजिन्द्र सिंह 'सीप'
लेखक

ॐ श्री साई राम

साधना– भाग–1

ईश्वर की अत्यंत कृपा होती है जब जीव इस दृश्य जगत में आता है। जीव का इस नज़र आने वाले संसार में आ जाना इसके अपने हाथ में नहीं है, और न ही इसे कोई ऐसा कार्य करना आता है, जिसे हम कह सकते हैं कि योग्यता नहीं है जिसके फलस्वरूप इसे यह पंच भूतीया शरीर उपहार के तौर पर मिला हो। यह तो उस दयालु कृपालु भगवान के अपने स्वभाव के कारण ही है क्योंकि वह दया करता है और अकारण करता है। यह जीव इस संसार में आकर उसकी दया को भुला देता है और ऐसा मानने लगता है कि यह उसके पूर्व जन्मों का फल है जो उसे मनुष्य शरीर प्राप्त हुआ और जैसे (Prism) प्रिज्म धूप की किरण के सामने आते ही सात रंग बिखेर देता है। उसी तरह यह मानव भी इस संसार में आते ही अपनी प्रभुसत्ता बिखेरने लगता है, अपने अंह का प्रदर्शन करने लगता है। इसी प्रदर्शन में अपने वजूद और कारण दोनों को भूल जाता है। जैसे जब हम सरसों के तेल का दीया जलाते हैं वह अपनी रोशनी के साथ धूआं भी बिखेरता है, शुरु में तो उसकी रोशनी उसके ऊपर रखी हुई चिमनी से भली प्रकार बाहर आती है, लेकिन धीरे-धीरे रोशनी कम होती जाती है। कारण, रोशनी के साथ निकलने वाला धुआं चिमनी की दीवारों पर लिपटना शुरु हो जाता है और इतना ज्यादा जम जाता है कि रोशनी चिमनी के बाहर आ नहीं आ पाती यद्यपि चिमनी के भीतर दीया जल रहा है, रोशनी फिर भी बाहर नहीं आ रही। तब हम उस चिमनी को सावधानी पूर्वक उठाते हैं कपड़े से साफ करते हैं और दोबारा उसी चिमनी से रोशनी उसी तरह बाहर आने लगती है जैसे पहले थी, शुरु में थी। चिमनी को साफ करने की प्रक्रिया को हम साधना कहते हैं। (Meditation) यह जीव भी संसार में आ कर सांसारिक माया से इस कद्र घिर जाता है कि इससे बाहर आना इसके अपने वश में नहीं होता है, फिर परस्थितियां बनती हैं। जीव ईश्वर से प्रार्थना करता है और माया से बाहर आना चाहता है। फिर ईश्वर की प्रेरणा से जो

प्रक्रिया शुरु करताहै उसे माधना (Meditation) कहते हैं। साधना अथवा Meditation क्या है ? और क्यों की जाती है ? इसको हम एक और उदाहरण द्वारा समझते हैं।

एक किसान अपने खेत में गेहूँ अथवा धान का बीज बोता है फिर उसे पानी देता है और खाद डालता है, ताकि फसल अच्छे ढंग से हो सके और वह उसका भरपूर लाभ उठा सके। लेकिन समय के साथ-साथ जैसे-जैसे धान की फसल बढ़ने लगती है बिल्कुल उसी के साथ खेत में घास फूस भी उगने लगता है, और बढ़ने लगता है। किसान ने तो खेत में धान का बीज लगाया लेकिन यह घास फूस बिना लगाये होने लगा। किसान को इसकी चिन्ता होने लगती है एक तो यह घास फसल की झाड़ (quantity) (yield) कम कर देता है और साथ ही साथ किसान द्वारा दिया जा रहा धान को पानी व खाद का काफी हिस्सा भी यह घास खाने लगता है। फिर ऐसे सब कार्य जो किसान घास को उखाड़ने और फसल को खुशहाल करने के लिए करता है साधना कहलाते हैं।

इसी तरह मानव भी इस धरती पर आने के बाद ज्यों ज्यों दुनिया में आगे बढ़ता है, महसूस करता है, कि जितनी भी कोशिश वह खुशी रूपी फसल को प्राप्त करने की करता है उतना ही कष्ट रूपी घास उसके रास्ते में आता है। ऐसे में मानव जब ईश्वर रूप गुरु या गुरु रूप ईश्वर की मदद से यह कष्ट रूपी घास को अपने जीवन के रास्ते से हटाने की कोशिश करता है तो साधक कहलाता है और उसके द्वारा इस दिशा में उठाये गये सब कदम साधना कहलाते हैं।

साधना क्यों की जाती है ?

वास्तव में, जो भी प्राणी इस दुनिया में आता है, वह अपने जीवन में हर समय हर तरफ से खुशी ही प्राप्त करना चाहता है। वह कभी नहीं चाहता कि उसे कभी कोई दुख हो। बचपन में वह अपने माता-पिता से सुख चाहता है लड़कपन में मित्रों से जवानी में अपने जीवन साथी से और बुढ़ापे में अपने बच्चों से। सुख की चाह में ही वह मन्दिर जाता है पूजा करताहै, तीर्थ यात्रा करता है। दान करता है, पित्रों को पूजता है और श्राद्ध करताहै। जितने भी साधन करता है सुख को पाने के लिए लेकिन बिड़म्बना देखो, या तो सुख हासिल नहीं होता, अगर होता भी है तो क्षणिक, तुरन्त चला जाता है। दुख कभी नहीं चाहता लेकिन दुख हमेशा बना रहता है।

क्यों होता है ऐसा ?

क्योंकि पहली बात तो यह है कि इस बात का ही ज्ञान नहीं कि सुख मिलेगा कहां से ? दूसरी जैसा कि हम सब इस बात से सहमत हैं कि दुनिया में हर चीज़ का कोई ना कोई रूप है पहचान है– तो क्या इस सुख का भी कोई रूप है ? पहचान है ?

हां अवश्य है-क्योंकि हमें उसके रूप की पहचान नहीं है हमें उसकी जानकारी नहीं हमें उसकी वास्तविकता का पता नहीं है– ऐसे में सुख हमें अचानक कहीं से मिल भी जाये तो हम अपनी अज्ञानता के कारण उससे चूक जायेंगे हम उससे मिल कर भी मिल नहीं पाते। हम उसे अपने पास रख नहीं पाते, अनजाने सम्बन्धों की तरह खुद ही उसे विदा कर देते हैं ।

इसको एक उदाहरण से समझते हैं।

एक घर में कुछ महमान आये हुये है, रात्रि में सभी मिलकर बैठे हैं बातें कर रहें हैं। अचनाक बिजली बन्द हो जाती है और अन्धेरा छा जाताहै। अन्धेरे को दूर करने के लिये लालटेन को जगाना है और लालटेन को जगाने के लिए दीया सिलाई की जरूरत है। अब अगर घर का कोई मैंम्बर कोशिश करे तो वह रसोई घर में जा कर दीया सिलाई उठा सकता है और उससे लालटेन भी जला सकता है क्योंकि, उसे उस बात का ज्ञान है कि दीयासिलाई कहां पर रखी हुई है और लालटेन कहां पर रखी हुई है लेकिन अगर घर आया हुआ मेहमान कोशिश करे कि मैं दीया सिलाई को ढूंढ कर लालटेन जला दूं तो कोशिश न सिर्फ असफल ही रहेगी बल्कि वह कई दूसरी चीज़ों को अन्धेरे के कारण तोड़ फोड़ भी कर देगा। ऐसे में यह भी मुमकिन है कि खुद उसके भी चोट लग जाए। दीया सिलाई के मिलते ही लालटेन जग जाती प्रकाश ही प्रकाश हो उठता अन्धेरे से होने वाली परेशानी व दुख कुछ भी न होता लेकिन अज्ञानता के कारण प्रकाश प्राप्त करने की चाह में सुख प्राप्त करने की चाहमें दुख-क्लेश परेशानी हासिल हो गये। इसलिये ज्ञान का होना परम आवश्यक है नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्र मिह विद्यते– (गीता) ज्ञान के समान पवित्र दूसरी कोई भी चीज़ नहीं है।

अब ज्ञान हासिल हो तो कहां से हो ? कौन करायेगा ऐसा ज्ञान जिसे पवित्र कह सके। कैसे प्राप्ति होगी इस ज्ञान की ?

ये कुछ सवाल हैं, जो किसी भी साधक द्वारा साधना पथ पर बढ़ने से पहले पूछे जाते हैं और इसके साथ एक बात किसी भी साधक द्वारा उत्सुक्ता वश पूछी जाती है कि इसमें समय कितना लगेगा!

इन सब सवालों का जवाब हमें गीता के एक ही श्लोक में मिल जाता है जिसे हमने पहले भी अपने विचार में लिया था–

नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्र मिह विद्यते।

तत्स्वयं योग-संसिद्धः कालेन आत्मनि विन्दति

संसार में ज्ञान के समान दूसरी कोई भी पवित्र अथवा महान चीज़ नहीं है अर्थात ज्ञान प्राप्ति सबसे उत्तम प्राप्ति है लेकिन, यह ज्ञान योगी अर्थात साधक के मन में या हृदय में समय के साथ स्वयं (खुद व खुद) उत्पन्न होता है। (थोड़ा विस्तार से इसे समझते हैं)

योगी अथवा साधक का मतलब जो साधना में लगा हुआ है उसके मन में ज्ञान उत्पन्न होता है लेकिन समय के साथ या समय आने पर। अब यह समय कितना है इसकी कोई सीमा नहीं। यह एक पल भी हो सकता है जितने समय में राजा जनक को हुआ था, यह कुछ वर्षों तक तपस्या में लगे रहने के बाद भी हो सकता है जैसे गौतम बुद्ध। जन्म से भी होता है कई लोगो को, जैसे प्रहलाद। अब इसमें एक और खास बात। समय जितना भी लगे– लेकिन यह ज्ञान खुद व खुद प्रकट होगा मतलब ज्ञान के प्रकटीकरण में साधक को या उसके गुरु को कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता जिससे यह ज्ञान प्रस्फुटित हो। जैसे सूर्य जब निकलता है उसकी रोशनी और किरणें जो हमारे तक पहुंचती हैं उन्हें धरती पर लाने के लिए किसी को भी किसी तरह का प्रयत्न नहीं करना पड़ता है। ये सब अपने आप हो जाता है। जैसे बीज में से पौधा निकलता है बाकी सब कार्य तो बीज बोने वाला करता है लेकिन बीज में से पौधा खुद व खुद उठता है तो अब यहीं पर एक सवाल उठता है जब ज्ञान का उदय अपने आप होना है और होता है तो साधक को क्या करना है साधना क्यों करनी है ? रात्रि का पहर है आसमान में चाँद की बजाये बादल हैं, कड़कती बिजली! हर तरह से साएं साएं की आवाज़! आन्धी की आवाज़ आ रही, सन्नाटा है, खौफ़ है, डर है।

अब हम फिर से श्लोक के बारे चिन्तन करते हैं सूर्य तो अपने आप उदय

होना है रात्रि तो अपने आप कट जानी है समय के साथ-साथ रात गुजर रही है, और ठीक समय आने पर सवेर हो ही जानी है तो क्या हम यूँ ही हाथ पर हाथ रख कर बैठ जायें- चादर ओढ़ कर सो जायें- (कर्महीन हो जायें) जरा कर के तो देखें ऐसा-ऐसा भी नहीं हो पायेगा-बादल डरा रहें है, आन्धी डरा रही है, अन्धेरा डरा रहा है, खौफ़ है, चिन्ता है। ये सब आपके चैन के शत्रु-सोने देंगे बैठने देंगे ? कदापि नहीं। और फिर गीता के सन्दर्भ में देखें गीता कभी नहीं कहती कि कर्म न करो वह तो सर्वदा सबको कर्म करने के लिये कहती है प्रेरित करती है- भगवान कृष्ण भी कहते है कि, ''मुझे कोई भी कर्म करने की आवश्यकता नहीं फिर भी करता हूँ।'' रात काटनी है निडर हो कर काटनी है भय हीन हो कर काटनी है।

आम आदमी के जीवन में जब तक दुख होते हैं, परेशानी होती है, भय होता है। बीमार होने का भय, इज्ज़त का भय और मृत्यु का भय और सबसे बड़ा भय अज्ञानता का भय इसे ही रात का पहर कहते हैं और शास्त्रों के अनुसार आम आदमी के जीवन में ज्ञान का हो जाना अथवा आ जाना सुख व आनन्द का आ जाना, बीमारियों - इज्ज़त और मृत्यु के भय का (समाप्त) हो जाना ही सवेरा है दिन है।

जैसे भयंकर रात में दिया या लालटेन जला कर अन्धेरा कुछ कम किया जा सकता है रात का डर कुछ कम किया जा सकता है, इसी तरह जीवन के कष्टों को भी भगवान का नाम ले कर उसका चिन्तन करके कुछ कम किया जा सकता है। और कुछ ऐसा प्रयास किया जा सकता है कि दीया रात भर जलता रहे ऐसी युक्ति लगाई जा सकती है जिससे शारीरिक व मानसिक थकान न हो। इस तरह मानव अपने जीवन में भी इस तरह के उपाय कर सकता है जिससे कष्ट, बीमारियों, इज्जत और मृत्यु के भय को कम ही नहीं, खत्म भी किया जा सकता है। जीवन की नीरसता को खत्म किया जा सकता है और फिर जब सूर्य उदय होता है तो उसका भरपूर फायदा लेते हुये जीवन को सुखद व आनन्दमय जिया जा सकता है।

ऐसी विद्या (शिक्षा) को हासिल करना है ताकि जब हृदय में ज्ञान की उत्पत्ति हो तो उसका भरपूर फायदा लिया जा सके। क्योंकि-विद्या से विनय आती है

और विनय से ही पात्रता हासिल होती है और पात्र में ही कुछ (सुख) डाला जा सकता है। जितना पात्र होगा उतना ही सुख होगा।

इस तरह भगवान का नाम व उसका चिन्तन ही मनुष्य को वह विद्या देता है जिससे ज्ञान उत्पन्न हो। जितनी विद्या होगी उतना ही ज्ञान होगा जितना ज्ञान होगा उतना ही जीवन भय रहित होगा।

तो अब हमें यह जानना है कि वह कौन-सी विद्या है जिससे हमारे भीतर ज्ञान प्रकट हो सके ?

विद्या

जैसा कि पीछे हमने गीता के श्लोक के माध्यम से यह जानकारी प्राप्त की, कि ज्ञान प्राप्ति अथवा ज्ञान के प्रकटीकरण अथवा ज्ञान के हो जाने के समान दूसरी कोई पवित्र विद्या नहीं है। इसका मतलब है विद्या के एक से अधिक प्रकार हैं, या यूँ कहे कि एक तो वह विद्या है, जिसे हम पवित्र विद्या या ज्ञान कह सकते हैं। दूसरी वह विद्या जिसे हम अपवित्र विद्या अर्थात् सांसारिक विद्या अथवा अज्ञान कह सकते हैं। इस तरह विद्या दो प्रकार की हुई।

1. आध्यात्मिक विद्या (ज्ञान)
2. साधारण विद्या (भौतिक विद्या) अज्ञान

अब कोई अगर पूछे कि विद्या तो विद्या ही है–एक को ज्ञान तो दूसरे को अज्ञान क्यों कहा जा रहा है ? और तो और आज के इस आधुनिक युग में बिरला ही कोई व्यक्ति होगा जिसे विद्याहीन कहा जा सकता है।

तो इस सवाल का एक ही जवाब है कि एक (भौतिक) विद्या वो है जो जीवन के साधन जुटाती है दूसरी विद्या (आध्यात्मिक) वो है जो जीना सिखाती है।

एक विद्या (भौतिक) वो है जिससे पता चलता है गन्ना कैसे उगाया जाता है। और दूसरी (आध्यात्मिक) विद्या वो है जिससे पता चला है कि गन्ने में मिठास कहां से और कैसे आती है।

एक विद्या वो है जो हमें संसार की सभी वस्तुओं की जानकारी देती है और दूसरी (आध्यात्मिक) विद्या वो है जो हमें अपने और अपने भीतर की जानकारी और हमारा संसार से क्या संबन्ध है इस की जानकारी देती है।

एक विद्या वह है जिसे मनुष्य जितना भी हासिल कर ले अज्ञानी ही कहलाता है दूसरी विद्या वह है जिसे मनुष्य अंश मात्र भी ग्रहण कर ले ज्ञानी कहलता है। और यही विद्या ब्रह्म विद्या भी कहलाती है।

आओ अब एक प्रयास करते हैं पहले विद्या को समझने का–

इसके लिये शब्द विद्या का सन्धि छेद करें तो यह बन गया वि + द्या

वि– विचार , धा–धारणा (धारा) मतलब

विचार धारा – अब इसका मतलब यह हुआ कि जिस बात से मनुष्य की विचार धारा परिपक्व हो जाये, सशक्त हो जाये, स्वच्छ हो जाये वही विद्या है।

अब दूसरा दृष्टिकोण–

वि – 1) विश्व 2) विष्णु 3) विराट

धा – धारणा

अब इसका अर्थ यह हुआ कि विद्या वह चीज है, जो मनुष्य की (1) विश्व के प्रति धारणा है (2) विष्णु अर्थात् भगवान के प्रति जो धारणा (3) विराट के प्रति जो धारणा है, उसको मनुष्य के मन और बुद्धि में स्पष्ट करके परिपक्व व स्थिर कर दे वही विद्या है।

इस लिए अब हमें यह जानना आवश्यक है विश्व क्या है हमारा इस विश्व में क्या स्थान है और क्या सम्बन्ध है ?

विष्णु क्या है ? हमारा विष्णु से क्या सम्बन्ध है ?

विश्व का विष्णु से क्या सम्बन्ध है ?

विराट क्या है ? हमारा, विश्व का और विष्णु का इस विराट के साथ क्या सम्बन्ध है ?

जब इन हम सभी तथ्यों को समझ जायेंगे या समझने लगेंगे तो हमारी विचार धारा भी सशक्त होने लगेगी और जैसे ही हमारी विचार धारा सशक्त हुई उसी वक्त हमारे भीतर ज्ञान का स्रोत फूट पड़ेगा। जिस विद्या से ज्ञान अथवा ब्रह्म का स्रोत हमारे भीतर फूट पड़े वही ब्रह्म विद्या कहलाती है।

अब जानने योग्य एक बात यह भी है कि अगर ज्ञान की उत्पत्ति हृदय में अपने आप होनी है वह भी समय आने पर तो समस्त विद्या प्राप्ति का प्रंपच क्यों? क्या आवश्यकता है किसी से कुछ जानने की पूछने की ? क्या आवश्यकता गुरु

जनों की, संतों की ? क्या जरूरत है ग्रन्थों की और उनके अध्ययन की ?

पहले यह बात ज़रूर अपने मन में पक्के तौर पर मान लेनी चाहिये कि उपरोक्त बात शत-प्रतिशत सत्य है-ज्ञान का अर्थात् सत्य का अर्थात् भगवान का उदगम स्थान तो हृदय ही है और वह मनुष्य के अपने भीतर है, न कि कहीं बाहर और होना भी है खुद व खुद। कैसे- ?

हम सब फूलों को रोज़ ही देखते हैं खिलते हैं, खुशबू देते हैं, आकर्षित करते हैं। शायद आपने देखा भी हो, अगर नहीं भी देखा तो कल्पना कर सकते हैं- मान लो एक पौधे के ऊपर कुछ Points ऐसे बन गए हैं जहां माली देखता है कि अब फूल खिलेंगे (Formation of Thalamus) क्या कभी किसी माली को उन Points के नज़दीक जाकर कहना पड़ता है कि फूल भईया अब तुम खिल जाओ क्या कभी किसी माली को ऐसे कहना पड़ा है कि भईया फूल तुम इस तरह से खिलना इस तरह से नहीं-नहीं कभी नहीं। हाँ यह बात ज़रूर है कि वह पौधे को इस लायक ज़रूर कर देता है कि उस पर फूल खिल उठें। पौधे पर फूल लगें इसमें माली ने बहुत कुछ किया। पौधे का फूल खिल उठे उसमें वह कुछ नहीं कर पाता। पौधे पर फूल लगे इसके लिये उसे बहुत कुछ करना पड़ा-बीज बोया-सिंचाई की-पानी दिया-धूप का प्रबन्ध किया-जानवरों से पक्षियों से रक्षा की, बाड़ लगाई-सब तरह से ध्यान किया फूल का खिलना, पौधा बड़ा हो जाये, फूल दे, यह उसकी इच्छा है। लेकिन फूल उसके कहने पर खिले, उसके कहने के मुताबिक खिले, यह नहीं हो सकता-यह फूल की एक स्वयं की प्रक्रिया है उसे भी यह किसी से सीखने की ज़रूरत नहीं है।

नदी सागर की तरफ बहती है-कौन कहता है इसे कि हे नदी! तुम सागर की तरफ ही बहना और कोई कह भी दे कि हे नदिया! अब तुम सागर की तरफ नहीं किसी पर्वत की तरफ बहना शुरू कर दो या किसी दूसरी तरफ को हो जाओ। सागर की तरफ नहीं, क्या नदी उसका कहना मान लेगी ? कदापि नहीं और नदी को अपना बहाव सागर की तरफ रखने के लिये किसी से कुछ सीखना नहीं पड़ता।

हम एक दीया जलाते हैं या यूँ कहिए कि हम अग्नि जलाते हैं हम देखते हैं कि अग्नि की या दीये की लौ ऊपर की तरफ उठ रही है आप इस लौ को जितना चाहे कोशिश करके देख लो कि नीचे की तरफ झुक जाये, कभी भी

नहीं हो सकता। अग्नि ऊपर की तरफ उठती है इसके लिये न तो उसे कुछ किसी से पूछना होता है और न ही जानना होता है। खुद व खुद ही उठती है। हां, मानव अग्नि के जलने तक सहायक है लकड़ी लाता है, चिंगारी दिखाता है लेकिन अग्नि के जलने पर उसमें कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता कि हे अग्नि! आज तुम कहे अनुसार जलो आज तुम ऊपर की ओर न उठो।

और हमारा श्लोक जिसके ऊपर हम पहले ही से चर्चा कर रहे हैं कि ज्ञान का प्रकटीकरण, ज्ञान की उत्पत्ति मनुष्य के भीतर खुद व खुद होती है लेकिन मनुष्य है कि मानता ही नहीं। कहता ही रहता है, रट लगाये है कि मुझे ज्ञान सिखाओ, मुझे ज्ञान बताओ, मुझे ब्रह्म के दर्शन कराओ। मुझे परमात्मा से मिलाओ। वो शंकित है कि अगर कोई नहीं बतायेगा तो वंचित रह जायेगा।

मनुष्य सोचता है कि यह जीवन कहीं उसका बेकार न चला जाये– इसीलिए वह सदा इसी कोशिश में रहता है कि कोई ऐसा गुरु मिल जाये, कोई ऐसा सन्त मिल जाये, कोई ऐसा मन्त्र मिल जाये, कोई ऐसा ग्रन्थ मिले ताकि उसकी यह समस्या का हल हो पाये। वह अपने परमेश्वर अपने ईश्वर को प्राप्त कर सके वह उस ज्ञान को प्राप्त कर सके जिसे ब्रह्म ज्ञान कहते हैं।

एक बार कुछ महात्मा लोग सागर किनारे बैठे सत्संग कर रहे थे। जब उनका सत्संग चल रहा था, तो सागर की एक मछली लहर के साथ किनारे तक आयी वहां तक आयी यहां पर सत्संग हो रहा था चूंकि लहर को सागर में पुनः वापिस जाना था सो मछली भी उतनी देर ही किनारे पर रही जितनी देर लहर, मछली भी पुनः सागर के भीतर चली गई मछली जितनी देर लहर के साथ किनारे पर रही उतनी देर में उसके कानों में सत्संग में हो रही बात का कुछ अंश उसको भी सुनाई पड़ा उसे सुनाई पड़ा कि मछली हमेशा पानी में ही सुखी रह सकती है पानी ही मछली का ईश्वर है।

अब मछली ने सागर में जब पुनः प्रवेश किया तो उसके कानों में यह बात समा चुकी थी और उसके हृदय में पहुंच चुकी थी कि पानी के साथ ही मछली सुखी रह सकती है। अब मछली को ऐसा लगने लगा कि ये मेरे अच्छे भाग्य (Fortune) हैं कि मुझे इस बात का पता लगा नहीं तो मेरी पड़ोसी मछलियां कितनी हैं जिन्हें इस बात का पता भी नहीं, लेकिन अब उसे एक इच्छा सताने लगी, कि अब पानी की अर्थात् अपने ईश्वर की प्राप्ति कैसे करे।

ईश्वर अर्थात् जल की प्राप्ति की तीव्र इच्छा उसके मन में जाग उठी।

ईश्वर कहां मिलेगा–जल कहां मिलेगा उसे यह चिन्ता सताने लगी। अपनी यही चिन्ता लेकर वह सागर में दूसरी मछलियों के पास गई। सबसे कहती कि मुझे सौभाग्यवश इस बात का पता चला है कि मछली का असली सुख पानी में ही है पानी ही मछली का ईश्वर है क्या तुमने कभी पानी देखा है ? पानी के बारे तुम क्या जानते हो ? पानी हमें कहां पर मिलेगा ? कौन मिला सकता है हमें पानी से ? क्या हमारे इस जीवन में यह सम्भव भी है ? यह सारे सवाल उसने सागर की बहुतेरी मछलियों से पूछे। लेकिन किसी ने भी उसकी बातों का जवाब नहीं दिया। अधिकांश ने तो यह भी कहा कि पानी होता भी है हमें तो यह भी मालूम नहीं, कहां मिलेगा ? कैसे मिलेगा यह हम सब तुमको कैसे बतायें ? और कई मछलियां तो उसके साथ हो लीं कि हम सब मिल कर प्रयास करेंगी उस पानी को ढूंढने को उस ईश्वर को पाने का।

अब तुम ही बताओ क्या मछली के सवाल उसकी यह उत्सुकता सही है? क्या उसकी खोज सही है ?

अरे पानी तो तमाम उसके इर्द–गिर्द है, उसका तो जन्म ही पानी में हुआ। उसका पालन–पोषण भी पानी ही तो कर रहा है। पानी के बिना मछली का जीवन–ये तो बात किसी की सोच में भी नहीं आ सकती। उसका यह शरीर उसकी ये सांसें और उसकी तमाम क्रियायें पानी पर हो तो निर्भर है। अरे पानी नहीं तो मछली नहीं, पानी है तो मछली है।

लेकिन अब इस भ्रमित, शंकित, जिज्ञासु, अज्ञानी मछली को कौन समझाये कौन बताये कि पगली पानी है तो तू है। पानी नहीं तो तू भी नहीं। मछली को यह ज्ञान हो जाना कि पानी है तो तू है, ही पानी की प्राप्ति है। मनुष्य को यह ज्ञान हो जाना कि ईश्वर है तो तू है–ईश्वर की प्राप्ति है।

एक गुरु ने अपने शिष्य को बुलाया और कहने लगे बेटा! आज तुम रेलवे स्टेशन पर चले जाना वहां पर हमारे बहुत ही करीबी रिश्तेदार आ रहे हैं। तू उन्हें सावधानी पूर्वक घर ले आना, देखना वे हमारे बहुत ही आदरणीय बन्धु हैं कहीं उनके स्वागत में कोई चूक न कर जाना। शिष्य ने कहना माना और तुरन्त स्टेशन को चल दिया। जल्दी में गुरु जी से यह पूछ ही न सका कि गुरु जी जो बन्धुवर आ रहे हैं उनकी पहचान क्या है? कौन से डिब्बे में आने वाले हैं। मैं उनको कैसे पहचान सकूँगा। होता यह है कि शिष्य स्टेशन पर खड़ा है, गाड़ी आ चुकी है। सभी यात्री एक-एक करके उतर चुके हैं क्योंकि वह अपने

मेहमान को पहचानता नहीं, जानता नहीं, वहीं पर बेकार खड़ा रह जाता है। अन्त में खाली हाथ वापस अपने गुरु जी के पास आ जाता है।

यही हाल है आज के साधकों का भी। कहते हैं ध्यान लगाना है–अरे भाई! किसका ध्यान लगाना है ?

परमात्मा का–भगवान का, ईश्वर का–

क्या तुमने कभी उसको देखा है ? जाना है ? क्या जानते हो तुम अपने उस परमात्मा के बारे में जिसका ध्यान लगाना है? कैसा है वो–कुछ तो हुलिया होगा उसका भी ?

नहीं मुझे उसके बारे में कुछ मालूम नहीं। मैं नहीं जानता कैसा है वो ? मुझे तो इतना पता है कि भगवान होता है और **ध्यान** से उसको पाया जाता है। बस इसलिये मुझे **ध्यान** लगाना है, मैंने परमात्मा को पाना है।

हाँ, यह तो ठीक है लेकिन तुम उसे कैसे पहचान पाओगे ? जानतो तो तुम उसे हो नहीं। ऐसे में अगर वह परमात्मा तुम्हारे पास आ भी जाये तो कैसे पहचानोगे ?

तुम्हारे ध्यान में आ भी जाये तो कैसे यकीन करोगे कि यह वही भगवान हैं जिनका मैं ध्यान कर रहा हूँ। ध्यान तो करना है–ज़रूर करना है–ध्यान से ही उसकी प्राप्ति होगी। लेकिन हमारा किया हुआ प्रयास विफल न हो जाये तो यह ज़रूरी है कि हमें भगवान की पहचान भी हो।

तो हमें सबसे पहले यह जानना है कि भगवान (ईश्वर) कहते किसे हैं और क्यों कहते हैं? क्या करता है ईश्वर और कैसे करता है ईश्वर ?

पीछे जब हम शब्द विद्या पर चिन्तन कर रहे थे तो हमने देखा कि विद्या शब्द में वि से–(1) विष्णु (2) विश्व (3) विराट होते हैं।

तो अब हमारा सवाल जो ऊपर लिखा हुआ यह (वि–से विष्णु) के बारे में ही पूछा गया है।

यहीं पर एक बात और स्पष्ट कर दूँ कि जब हम विष्णु (भगवान) की बात करेंगे तो विश्व और विराट की चर्चा खुद व खुद हो ही जायेगी। क्योंकि विष्णु विश्व से अलग नहीं है और विश्व ही विराट है।

भवानी शंकरौ वन्दे श्रद्धा विस्वास रूपिणौः
या भयां विना न पश्यन्ति सिद्धः स्वान्तास्थम् ईश्वरं।

यह जो श्लोक ऊपर लिखा गया है यह श्री रामचरित्र मानस के पहले पन्ने

पर दूसरा श्लोक है। इसका सीधा अर्थ तो यह है कि भवानी और शंकर की जो कि श्रद्धा और विश्वास की मूर्त हैं हग वन्दना करते हैं क्योंकि, उनके सहयोग के बिना हम उस परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकते जो कि हमारे अन्दर ही मौजूद है। (क्योंकि हमारा मूल विषय है विष्णु अर्थात् भगवान की जानकारी लेना।)

जैसे रामायण एक ऐसा महाग्रन्थ है जिसको अगर कोई श्रद्धा और विश्वास के बिना पढ़ता है तो वह पढ़ने का लाभ प्राप्त नहीं कर सकता।

चलिये श्लोक की मूल प्रकृति को समझें।

श्लोक में एक भवानी है एक शंकर है। भवानी माँ है, जननी है, शक्ति है, श्रद्धा है, भक्ति है। शंकर–पिता हैं, परमेश्वर हैं, शक्तिमान हैं, विश्वास है। एक श्रद्धा अर्थात् भक्ति की मूर्ति है तो दूसरा विश्वास की मूर्ति है। और भगवान या ईश्वर के दर्शन करने के लिए या यूँ कहिए कि ज्ञान प्राप्ति के लिये जो कि पहले ही से हमारे भीतर हमारे अन्तःकरण में मौजूद है, इन दोनों का होना परम आवश्यक है।

एक उदाहरण द्वारा इसे समझने की कोशिश करेंगे। एक बार एक छोटा बच्चा जो किसी कारणवश अपने परिवार से बिछुड़ गया। अति छोटा होने के कारण उसे अपने माता–पिता की न कोई जानकारी रही और न पहचान। बस स्मृति में माँ की ममता की एक तस्वीर बनी रही। एक अर्से तक बच्चा अपने परिवार से अलग रहा। संयोगवश वह बच्चा फिर अपने परिवार तक अपने घर तक वापिस पहुँच गया। माँ की ममता उसके दिल दिमाग में अभी तक यूँ ही घर बनाये हुए थी। इसीलिये उसे मां को पहचानने में देर न लगी। मां ने उसे खूब लाड़ प्यार किया। थोड़ी देर में घर के सभी सदस्य इकट्ठे होने लगे। बच्चा अब किसी को भी पहचान नहीं पा रहा था। माँ ने बच्चे को सबसे परिचित करवाया और अन्त में बताने लगी कि **अमुक पुरुष तेरा पिता है।**

अब अगर बच्चा माँ का कहना मान कर अमुक पुरुष को पिता मान लेता है तो उसे तुरन्त ही पिता की प्राप्ति हो जाती है। लेकिन अगर बच्चा माँ का कहना नहीं मानता, उसके शब्दों को सही नहीं मानता, माँ के चरित्र पर विश्वास नहीं करता और उल्टा पूछ बैठता है कि माँ मैं कैसे मान लूँ कि यही पुरुष मेरा पिता है ? क्या सबूत है कि मैं इनका ही बेटा हूँ ?

दुनिया में ऐसी कोई मां नहीं जो अपने बच्चे को यह सबूत दे सके कि

अमुक पुरुष ही तेरा पिता है। बच्चे को पिता की प्राप्ति तो मां के ऊपर श्रद्धा का ही फल है। ऐसे में अगर कहीं इसमें थोड़ा सा भी शक है तो बच्चा सारी उम्र कहीं भी चला जाये, कुछ भी कर ले उसे कभी पिता की प्राप्ति नहीं हो सकती। नज़दीक रह कर भी नहीं हो सकती। अगर मां के ऊपर विश्वास है तो न सिर्फ पिता की प्राप्ति है, बल्कि उसके प्यार, उसकी सम्पत्ति और उसके साम्राज्य का भी अधिकारी है अगर माँ के शब्दों पर उसे शंका है तो पिता के होते हुए भी उसे पिता की प्राप्ति और पिता से मिलने वाले तमाम सुख, प्यार और सुरक्षा से भी वंचित रहना पड़ेगा।

इसलिये पिता की प्राप्ति मां के ऊपर विश्वास और श्रद्धा पर ही निर्भर है।

तो अब सवाल यह उठता है कि आखिर मानव की **मां** कौन है? खासतौर पर उस जिज्ञासु मानव की जिसे हम साधक कहते हैं, उसकी मां कौन है ?

इस सम्बन्ध में वे सब महान ग्रन्थ और उन महान ऋषियों की रचनायें ही **हमारी मां हैं।**

जैसे जन्म देने वाली मां के अतिरिक्त, देश, धरती, गंगा, गायत्री आदि हमारी मां है, उसी तरह हमारी संस्कृति, हमारी सभ्यता और हमारे पुरातन ग्रन्थ जिनमें वेद, उपनिषद, पुराण, गीता और रामायण जैसे महान ग्रन्थ शामिल हैं, हमारी मां हैं। ये सभी हमें इशारा करते हैं उसकी तरफ।

ये सभी हमें पहचान देते हैं, हमारे पिता की। ये सभी हमें पहचान देते हैं परम पिता परमात्मा की, परमेश्वर की।

हमें चाहिये कि हम अपनी ही भलाई के लिए इनके ऊपर न सिर्फ श्रद्धा रखें बल्कि विश्वास भी करें।

मानवीय नज़रों को जो कुछ भी दिखाई देता है उसे संसार कहते हैं और संसार का ही एक दूसरा नाम विश्व है और एक नाम जगत है। यूँ तो इसके और भी कुछ नाम हैं लेकिन हमने वो नाम ही अपनी चर्चा में लिये हैं जिन से हर आदमी परिचित है। (These are the names which are familiar to every body) इस संसार में यह सभी कुछ आ जाता है जैसे हमारी धरती व इसके ऊपर पहाड़, नदियां, सागर, वनस्पति, पशु-पक्षी, कीट-पतंगे, कीड़े-मकौड़े और अति दुर्लभ और पावन प्रजाति यह मानव भी। इसके अतिरिक्त दूर स्थित सूर्य, चाँद, सितारे भी इसी संसार अथवा विश्व का ही हिस्सा हैं।

इसमें किसी की भी कोई दूसरी राय नहीं है कि कोई भी चीज़ तब ही बन पड़ती है जब बनाई जाती है। बिना बनाये कुछ भी नहीं बनता। सैंकड़ों नहीं हज़ारों उदाहरणें हैं हमारे सामने जिन्हें हम खुद ही अपनी कल्पना में ला सकते हैं। तो क्या यह संसार जो हमारे सामने है इसे किसी ने बनाया ? तो हमारा जवाब होगा – ज़रूर.....

बात आगे बढ़ाने से पहले एक खास चर्चा करनी चाहूँगा कि दुनिया का यह रिवाज है कि जब कोई भी कलाकार अपनी कला का नमूना दिखाता है प्रदर्शन करता है तो हम उसकी कला देखकर न सिर्फ हर्षित होते हैं, बल्कि उस कलाकार की सराहना भी करते हैं। कई बार तो उस कलाकार को हम जानते तक नहीं होते फिर भी भावना के आवेष में आ कर उस अनजान व्यक्ति की सराहना करते हैं। तो क्या उस महान कलाकार की हमने कभी सराहना की जिसने यह विश्व बनाया। क्या हमने कभी उस अनजान कलाकार की कला को सराहा कि यह अति सुन्दर है। क्या हमने कभी इस विषय पर सोचा भी है ?

(Possibly) सम्भवत: हमारा जवाब होगा–नहीं–फिर थोड़ा-सा विचार कर कह सकते हैं कि हमने यूँ तो कई बार प्रकृति को सराहा भी है। तो आम आदमी का जवाब इस विषय में यह हो जायेगा हाँ भी – नहीं भी।

कारण–हम कई बार प्रकृति की या दूसरे शब्दों में संसार की सराहना करते हैं लेकिन कब– जब हम कोई खास ऐसा नज़ारा देख लेते हैं जो पहले न देखा हो, कोई ऐसी घटना सुन लेते हैं जो पहले न सुनी हो। जैसे–कोई पर्वत से गिरता हुआ झरना देखकर या आसमान में टूटता सितारा देखकर– सागर की विशालता देख कर या सागर में उठता तूफ़ान देखकर। हम कह उठते हैं वाह! क्या नज़ारा है ? वाह! क्या अद्‌भुत दृश्य है? जब हम ऐसा करते हैं हम प्रकृति की सराहना तो करते हैं लेकिन सिर्फ उतनी प्रकृति की जितनी हमें नज़र आ रही होती है। पूरी सृष्टि अथवा संसार की नहीं सिर्फ उतनी की ही। हमारी सराहना एक सीमा में बन्ध जाती है जब कभी पूरी सृष्टि की बात होती है तो हम यही कहते हैं कि ये तो झूठ का नज़ारा है। यह संसार मिथ्या है, यह सारा संसार तो नश्वर है इसका कोई भरोसा नहीं। इससे किसी को मोह नहीं करना चाहिये। प्यार नहीं करना चाहिये। इसका मतलब यह हुआ कि जब हम संसार को छोटे टुकड़े अथवा एक छोटी इकाई के स्तर पर देखते हैं तो इसकी तारीफ करते हैं लेकिन जब इसी संसार को एक बड़ी इकाई मतलब As a whole

देखते हैं तो इसी का अनादर करते हैं। कभी सोचा है कि ऐसा क्यों हो जाता है ?

अंग्रेज़ी में एक शब्द है Prejudice जिसका अर्थ है Pre-occupied (Pre judgement) मतलब किसी के भी प्रति हमारी जो पहले से ही धारणा बनी हुई है। क्योंकि हम भी इस संसार के प्रति Prejudiced हैं इस संसार इस विश्व के प्रति पहले ही से एक धारणा रखते हैं कि यह संसार मिथ्या है, झूठ है, नश्वर है, श्रेयस्कर नहीं है, जितना हो सके इससे दूर रहना, बच के रहना, इस विष तुल्य संसार से। क्योंकि, हमें जहाँ से भी शिक्षा मिली यही मिली। चाहे किसी पंडित से चाहे किसी पुस्तक से चाहे किसी कथा-सत्संग से और शिक्षा का असर हमारे दिलो-दिमाग पर इतना है कि हम इसके अतिरिक्त कोई दूसरी बात सोच भी नहीं सकते। लेकिन हमें यह धारणा छोड़नी होगी। अगर हमें अध्यात्म के पथ पर चलना है हमें ये बातें भूलनी होंगी अगर ईश्वर दर्शन करना है ज्ञान प्राप्त करना है।

वास्तविकता एक और भी है कि हम यह धारणा छोड़ना चाहते भी नहीं हैं। हमें डर है कि ये जो दूसरी विचारधारा है, ये हमारे या हम इसके अनुकूल हैं भी या नहीं। एक उदाहरण लेते हैं-

एक बार रास्ते में दो चींटियां (Ants) मिल गईं। दोनों एक दूसरे का हाल पूछने लगीं। दोनों ने पूछा कि तुम कहां रहती हो ? तो एक चींटी बोली कि मैं सफेद दिखाई देने वाले पर्वत पर रहती हूँ और आनन्द से रहती हूँ। मुझे खाने दाने की कभी कमी नहीं आई, तो दूसरी ने कहा, कि मैं भी सफेद पर्वत पर रहती हूँ और बड़े आनन्द में हूँ। पहली चींटी ने कहा कि तू मेरे घर चल और उसके कहने पर दूसरी चींटी पहली के घर चली गयी। उसके स्वागत में पहली चींटी ने दूसरी को कुछ खाने को दिया ज्यों ही उसने खाने को अपने मुँह में रखा तो उसने उसे थूक दिया और बोली कि तुम यहां यह सब कुछ खाती है-ठीक है देखने में यह सफेद है लेकिन खाने में तो यह बहुत कड़वा है क्योंकि यह चींटी जिस पर्वत पर रहती थी वह नमक का पर्वत था। दूसरी ने उसे यह भी कहा कि तू मेरे वाले पर्वत पर आना और मेरा परोसा हुआ सफेद भोजन खाना फिर बताना कैसा है? मेरे वाले पर्वत पर सब मीठा ही मीठा है क्योंकि यह पर्वत चीनी (Sugar) का पर्वत था। पहली चींटी उसके घर जाने के लिये मान तो गयी लेकिन उसने इतना ज़रूर कहा कि देखो बहिन चाहे मेरा भोजन कितना भी कड़वा है लेकिन अब मुझे तो यही पसन्द है।

जब समय मिला तो पहली वाली चींटी दूसरी चींटी के घर गयी। उसे भी वहां पर भोजन परोसा गया। भोजन खाते ही कहने लगी–बहिन तू तो यूँ ही अपने भोजन की तारीफ कर रही थी, यह तो लगभग वैसा ही है जैसा मेरे घर का ही होता है। मुझे कोई फ़र्क नहीं लगता, मुझे तो इसमें भी कहीं मिठास नज़र नहीं आयी। दूसरी चींटी को बड़ी हैरानी हुई। सोचने लगी कि ऐसा नहीं होना चाहिये था कहीं कुछ गड़बड़ है। उसने मेहमान चींटी को अपना मुंह खोलने को कहा, जैसे ही उसने मुंह खोला तो देखा कि मेहमान चींटी के मुंह में पहले ही से कुछ रखा हुआ है। यह देख कर दूसरी चींटी ने उससे पूछा कि बहिन ये तुम्हारे मुँह में क्या रखा है तो मेहमान चींटी बोली कि ये तो मेरे वाले पर्वत की नमक की डली है जो मैं घर से ही लेकर आयी हूँ। मैंने सोचा शायद मुझे तुम्हारा मीठा खाना पसन्द आये या न आये। कहीं मुझे भूखे ही न रहना पड़े, इसलिये। लेकिन जब दूसरी चींटी ने उसके मुँह में रखी हुई नमक की डली जबरन निकाल दी फिर जब उस चींटी ने मीठा खाना खाया तो उसे भी आनन्द आने लगा।

बिल्कुल यही हालत है हमारी भी। हम किसी से कुछ पूछते हैं, जानकारी लेते हैं–साधना पथ पर चलना चाहते हैं लेकिन जो हमें पहले से मालूम है जो धारणायें इस विश्व के बारे में, ईश्वर के बारे में पहले से हमारे दिल में बनी हुई हैं, हम उन्हें छोड़ने को तैयार नहीं ऐसे में नयी बात हमें समझ आ नहीं सकती नयी बात हमारे दिल में समा नहीं सकती क्योंकि वहां तो पहले ही से कुछ धारणायें बसी हुई हैं। इसलिये साधक को चाहिये कि वह Prejudice न बने। अपने मन को खाली कर दे ताकि वहां कुछ नया रखा जा सके।

अब हम अपने मूल विषय पर चलेंगे कि ईश्वर ने यह विश्व बनाया कैसे?

अब हमारा प्रश्न यह है कि ईश्वर ने यह विश्व कैसे बनाया लेकिन इस प्रश्न से पहले मैं चाहूंगा कि हम इतना ज़रूर जान लें कि ईश्वर कहते किसे हैं ?

इस विश्व में बहुत सी ऐसी बातें हो जाती हैं, घटनायें घट जाती हैं (अच्छी भी, बुरी भी) जिनके बारे में साधारण मानव को कुछ पता नहीं चलता। जिनके ऊपर उसका कोई Control नहीं हो सकता वह करना चाहे, या न करना इससे फर्क नहीं पड़ता। वह कोई भी हस्तक्षेप नहीं कर सकता। सिवाये इसके कि वह अचम्भे में पड़ा रहता है कि ये कैसे हो गया किसने कर

दिया ? काफी छानबीन, सोच-विचार के बाद वह इस नतीजे पर पहुँच जाता है कि यह अदृश्य शक्ति है जो इन सारी घटनाओं का मूल कारण है, और यह शक्ति सिर्फ ऐसी घटनाओं के लिए ही ज़िम्मेवार नहीं है, बल्कि इस पूरे विश्व पर अपना अधिकार भी बनाये हुए है। वह अपने अनुसार सूर्य को चलाती है। चांद, सितारों को चलाती है। धरती व सागर को बान्ध कर रखती है, जीवों और वनस्पतियों को पैदा करती है, पालन-पोषण करती है और संहार (विनाश) करती है क्योंकि यह हमें दिखाई भी नहीं देती और हमारी पहुंच से बाहर होती है तो हम इसके आगे नतमस्तक हो जाते हैं और उसी अदृश्य शक्ति को हम ईश्वर कह कर पुकारने लगते हैं। यह शक्ति हम सब इन्सानों की शक्ति से बढ़ कर है इसलिये इसे ईश कहा गया (मुखिया) क्योंकि यह शक्तिं पूरी सृष्टि का संचालन करती है, मंगल करती है इसलिये इसको वर कहा गया (वरदान देने वाली) पंजाबी में इसी शक्ति को **ਰੱਬ** कहा गया जिसका अर्थ रहमतां बख्शन वाला. (**ਰਹਿਮਤਾਂ ਬਖ਼ਸ਼ਣ ਵਾਲਾ**) और (**ਰ ਤੋਂ ਰਚਨਾ ਕਰਨ ਵਾਲਾ ਅਤੇ ਬ ਤੋਂ ਬਰਬਾਦੀ ਕਰਨ ਵਾਲਾ**) अंग्रेज़ी में इसी शक्ति को God कहा गया जिसमें-

G—Generator

O—Organiser

D—Destroyer और मुसलमानों ने इसी शक्ति को अल्लाह कहा जिसका अर्थ है कि सबसे अलहदा (अलग) सबसे बड़ा, सबसे शक्तिमान, सबसे पावन, सबका भला करने वाला।

हमारी यह मान्यता है कि जो ईश्वर इस सृष्टि का सम्पूर्ण संचालन करता है, वही इस सृष्टि का निर्माता भी है। देखिये जो भी कोई किसी चीज़ का निर्माण करता है निर्माता कहलाता है। निर्माण हो चुकी चीज़ कला अथवा कलाकृति कहलाती है और कला अथवा कलाकृति बनाने वाला कलाकार। इसका मतलब यह हुआ कि ईश्वर कलाकार है और ये संसार उसकी कलाकृति। इसका अर्थ यह हुआ कि यह सृष्टि एक ऐसी कलाकृति है जिसे बनाने वाला ईश्वर है। और यह हमारी क्या सृष्टि के अधिकांश जीवों की मान्यता है, धारणा है कि इस सृष्टि को ईश्वर ने बनाया है।

लेकिन मैं इस धारणा का खण्डन करता हूँ। ईश्वर ने इस सृष्टि को बनाया नहीं है बल्कि वह खुद ही यह सृष्टि बना हुआ है। क्योंकि बात में,

धारणा में बहुत अन्तर है, क्योंकि कोई चीज़ बनाना या किसी वस्तु का निर्माण करना अलग चीज़ है लेकिन खुद ही किसी चीज़ में परिवर्तित हो जाना Change हो जाना (Disguised) अलग चीज़ है। ईश्वर ने इस सृष्टि की रचना नहीं की, इसे बनाया नहीं है बल्कि वह खुद ही यह सृष्टि, यह संसार, यह विश्व बना हुआ है।

इस बात को थोड़ा विस्तार से जानने की कोशिश करें। यह बात तो तय है कि ईश्वर कारण है इस सृष्टि का। जो कारण होता है उसे दूसरे शब्दों में बीज़ (Seed) भी कहते हैं। जैसे कोई भी बीज कारण होता है पौधे का, पेड़ का।

हमारे पास एक बीज है आम का–हमने इसे धरती में आरोपित कर दिया। थोड़े समय के बाद हम देखते हैं कि वहां पर एक पेड़ लग गया है। क्या यह पेड़ बीज कहीं से लाया ? क्या ये पेड़ बीज ने बनाया ? क्या बीज ने इस पेड़ का निर्माण किया ? नहीं–बीज ने पेड़ का निर्माण नहीं किया बल्कि बीज खुद पेड़ बन गया है। पहाड़ों की चोटियों पर वर्फ होती है जिनसे पानी अथवा नदियों की धाराएं निकल पड़ती हैं–तो क्या पानी बर्फ ने बनाया। नदिया को बर्फ ने बनाया–नहीं, बर्फ खुद ही पानी अथवा नदिया बन जाती है। हम अक्सर पहाड़ देखते हैं। पहाड़ क्या हैं ? मिट्टी और पत्थरों के ढेर हैं। क्या मिट्टी और पत्थरों ने पहाड़ बनाया–नहीं मिट्टी और पत्थर खुद ही पहाड़ बन गये। लेकिन जो शास्त्रों में इसके उपलक्ष्य में एक उदाहरण मिलती है जरा उसको जान लें तो बात और भी सुगम हो जाती है। एक कलाकार ऐसे होते हैं हमारे समाज में जिन्हें हम बहुरूपीये कहते हैं। कभी वह हमारे सामने कृष्ण के रूप में आते हैं तो कभी कंस के रूप में, कभी राम के रूप में तो कभी रावण के रूप में, कभी अफ़सर के रूप में तो कभी चपड़ासी के रूप में। तो क्या वह कृष्ण, कंस, राम, रावण, अफ़सर, चपरासी ये सब अलग–अलग बनाता है ? नहीं वह खुद ही ये सब कुछ बन जाता है। एक नाट्य कलाकार है वो अपने नृत्य में अपने शरीर को बहुत से ढंगों में पेश करता है वो कभी ताण्डव करता है तो शिव लगता है तो कभी वंशी बजा कर झूम झूम कर नाचता है तो कृष्ण लगता है न जाने कितने ढंगों से (Many Different Poses) अपने आप को पेश करता है जब वो ऐसा करता है तो शिव अथवा कृष्ण अथवा कुछ भी वह बनाता नहीं है बल्कि खुद बन जाता है। दुनिया में दो चीज़ों को हम ठीक से नहीं देख पाते। एक तो बहुत सूक्ष्म को, एक बहुत विशाल को। ईश्वर ने अपने विशालतम रूप में **नृत्य** करते हुए अपनी एक विशालतम झांकी बनाई

विशालतम झांकी बनाई जिसे हम **विश्व** अथवा **संसार** अथवा **जगत** कहते हैं। मालूम है जगत क्यों कहते हैं इसके दो अर्थ हैं ज + गत = जो गतिशील रहता है। दूसरा जगत का अर्थ है जागते रहना। क्योंकि गतिशील रहने के लिये जागते रहना अति आवश्यक है। क्योंकि ईश्वर हमेशा गतिशील है तो यह भी तय हुआ कि वह हमेशा जागृत भी है। क्योंकि ईश्वर अपनी **नृत्य कला के दौरान एक जगत रूपी विशालतम झांकी बनाये हुए है,** इतनी विशाल जितनी दूसरा कोई भी नहीं बना सकता तो वह नाट्य कलाकारों में या नृत्य कलाकारों में सबसे **उत्तम** व **अग्रणी** सिद्ध हुए तो उनका एक नाम **नटराज** भी पड़ गया। **ईश्वर का एक नाम नटराज भी है।**

ईश्वर का ही एक नाम नटराज है, क्यों है यह हम पीछे जान चुके हैं। शास्त्रों में इस बात का वर्णन आता है कि ईश्वर अपने शिव स्वरूप में कैलाश पर्वत पर हर वक्त ताण्डव करते रहते हैं, मतलब नृत्य करते रहते हैं, और यह नृत्य निरन्तर चलने वाला क्रम है। कभी भी रुकता नहीं है। यहां एक बात इस विश्व अथवा जगत के बारे जानेंगे। जगत का अर्थ है जो गतिशील है, जो रुकता नहीं है। यह विश्व और इसकी गति और कुछ नहीं बल्कि यह उस शिव स्वरूप ईश्वर का निरन्तर ताण्डव ही है। इस जगत के बारे शास्त्रों में एक और भी वर्णन आता है कि इसका लय भी होता है प्रलय भी। कहते हैं कि वह स्वयंभू परमात्मा-ईश्वर अपने आप में समाधि स्थित (मग्न) रहता है, जब वह अपनी समाधि से उठता है तो ताण्डव अथवा नृत्य प्रारम्भ करता है इसे ही सृष्टि अथवा जगत का लय होना या बन जाना कहते हैं और जब भी अपने ताण्डव को रोक कर पुनः समाधि में जाता है। अपने नृत्य को रोक लेता है। इसे ही सृष्टि का प्रलय होना या संहार होना या विनाश होना कहते हैं। लेकिन अनादि काल से युगों युगान्तरों से मानव इस सृष्टि को इसी रूप में देखता आ रहा है अर्थात् इसे लय के स्तर पर देखता आ रहा है क्योंकि मानव के इतिहास में मानव के हिसाब में यह सृष्टि लगातार चल रही है। बिना किसी रोक टोक के तो हमारे पूर्वजों ने हमारे पुरातन ऋषि मुनियों ने इसी बात को दर्शाने के लिए एक चिन्ह बनाया जिसे हम **स्वास्तिक** कहते हैं। जो इस प्रकार है-

स्वास्तिक का अर्थ है जो स्वयं ही है (खुद ही है, दूसरा नहीं)।

इस चिन्ह के चारों मुड़े हुए कोने इसकी गति को दर्शाते हैं। इस चिन्ह से

यह भी पता चलता है कि इसकी गति अथवा घूमने का अन्दाज़ गोलाकार है जो कि सृष्टि का Cycling and recycling को दर्शाता है। साथ ही साथ यह भी दर्शाता है कि सृष्टि के बारे में कोई भी पक्के तौर पर यह निर्णय नहीं लिया जा सकता कि यह कब और कहाँ से शुरू हुई थी, और कब और कहां पर जाकर रुकेगी। साथ ही साथ हम यह भी जानते हैं, कि जब कोई चीज़ गोलाकार घूमती है तो उसका Main point of force उसका Centre ही रहता है लेकिन गोलाकार वस्तु के साथ एक विडम्बना ज़रूर रहती है। कोई भी व्यक्ति उस का Centre नहीं ढूंढ सकता। उसका Centre वहीं बन जाता है यहां वह बना लेता है। इसी तरह इस सृष्टि का भी कोई मध्य (Centre point) नहीं है लेकिन है ज़रूर यही वह Centre है जहां से सारी Force मतलब Energy मतलब ईश्वरीय शक्ति चलती है अर्थात् अपना काम करती है जैसा हम गोले के आकार से यह जानते हैं कि उसका मध्य मतलब Point of force वहीं होता है यहां हम मान लेते हैं तो इस सृष्टि में भी ईश्वर का Main central working point वही हो जाता है यहां हम मान लेते हैं इसीलिये ईश्वर को हम OMNI PRESENT भी कहते हैं। ईश्वर को हम यहां देखना चाहें वही देख सकते हैं और अगर हम शंकित हैं, भ्रमित हैं तो कहीं भी नहीं है। जैसे गोलाकार वस्तु का कोई Centre नहीं होता उसी तरह इस सृष्टि का भी कोई मध्य नहीं है। कोई ऐसी खास जगह नहीं यहां हम यह कहें ईश्वर यहीं पर रहता है और कहीं नहीं।

तो वापस हम नटराज पर ही आ जाते हैं। यह नटराज के नृत्य की ही एक मुद्रा है जिसे हम विश्व कहते हैं। लेकिन आम मनुष्य को इस बात का आभास नहीं हो पाता। हाँ, कुछ-कुछ जीवों को इसका ज़रूर पता चल जाता है तो अब हमारे पास दो सवाल पैदा हो गये।

1. आम आदमी को इसका आभास क्यों नहीं हो पाता ?

2. जिन खास जीवों को यह रहस्य मालूम पड़ जाता है वे कौन होते हैं और उन्हें कैसे मालूम हो जाता है।

तो इन दोनों सवालों का जबाव हम एक साथ ही ढूंढने की कोशिश करेंगे।

हम अपने पिछले सवालों का जबाव जानने से पहले एक बात और जान लें कि जैसे ईश्वर का एक नाम नटराज है तो एक विष्णु भी है, क्यों ? हमारे

सामने एक विश्व है। आधुनिक विज्ञान ने भी इस बात की पुष्टि कर दी है कि इस विश्व का कोई भी स्थान रिक्त नहीं है। खाली नहीं है। There is nothing like 'vaccuume' in this world. यह सारा संसार छोटे-छोटे अणुओं से भरा पड़ा है और थोड़ा गौर से इस बात को जानें तो इस विश्व की बड़ी से बड़ी दिखाई देने वाली चीज़ें भी छोटे-छोटे अणुओं के मेल से ही बनी हुई है। यहां तक कि मानव शरीर भी। तो यह विश्व क्या हुआ–अणुओं का समूह। इसी सत्य को हमारे पूर्वजों ने पहले ही जान लिया था तो उन्होंने उस ईश्वर का नाम विष्णु रखते हुए यह तर्क दिया कि विश्व + अणु = विष्णु।

क्योंकि विश्व ईश्वर से ही निकला तो विश्व ईश्वर हुआ और क्योंकि विश्व अणुओं का समूह है। अत: यह विष्णु हुआ और विश्व ही ईश्वर है। इसलिये विष्णु ही ईश्वर है अर्थात् जिस ईश्वर को हमने नटराज (शिव) के रूप में जाना वही ईश्वर विष्णु के रूप में भी अपनी पहचान दे रहा है।

अब आगे बढ़ते हैं:-

पहले एक उदाहरण लेते हैं–एक रंगमंच पर एक नाटक खेला जा रहा है या ऐसा कहें कि राम नाटक अर्थात् राम लीला हो रही है। एक पात्र है जिसका निजी जीवन में नाम अशोक है और वह राम नाटक में राम की भूमिका निभा रहा है। वह दर्शकों के सामने जब भी आता है, राम बन कर आता है और अभिनय इस ढंग से करता है कि दर्शक उसे पूर्ण तया राम के तौर पर स्वीकार करने लगते हैं। वे उसके अभिनय से इतने प्रभावित हैं कि उसकी चकाचौंध में खो कर उसकी जय जय कार करते हैं, सिर झुकाते हैं, माथा टेकते हैं। आरती उतारते हैं और राम नाटक के 10 दिनों में उसे पूर्णतया राम के रूप में स्वीकार कर लेते हैं। इस बीच जब कभी स्टेज पर यह बताया जाता है कि राम का अभिनय करने वाले पात्र का नाम अशोक है तो भी दर्शक क्योंकि राम से प्रभावित है, उसे अशोक नहीं मानते। यद्यपि अशोक ही राम है और तो और राम तो उसका कुछ देर के लिये बनाया गया रूप है स्वांग है। अशोक राम बनने से पहले अशोक था और राम बनने के बाद भी अशोक हो जायेगा। अशोक सच्चाई है, राम मिथ्या है, भ्रम है, झूठ है। अशोक सदैव रहने वाला है, राम छलावा है। लेकिन सच्चाई की कोई चकाचौंध नहीं थी, उसकी कोई पहचान नहीं थी, झूठ की चकाचौंध है, पहचान है। बेशक छलावा है फिर भी उसका असर है, प्रभाव है। अशोक सत्य है, ईश्वर है, राम माया (भ्रम) है।

संसार है।

यही एक बात ध्यान में रखना। दोनों हैं एक ही, हमारे ही भ्रमित विचारों के कारण दो नज़र आते हैं।

हम पीछे यह जान चुके हैं कि ईश्वर ही यह विश्व बना हुआ है अथवा विष्णु ही यह विश्व बना हुआ है। लेकिन विश्व की चकाचौंध है, इसी का प्रभाव है। क्योंकि विष्णु इतने असरदार ज़ोरदार तरीके से विश्व का अभिनय कर रहा है, विश्व ही सब कुछ प्रतीत हो रहा है। विष्णु जो वास्तव में है, नज़रअन्दाज़ हो रहा है। विष्णु सत्य है, सदा रहने वाला है। विश्व असत्य है, छलावा है। स्वांग है, बदलने वाला है, झूठ है। विश्व का झूठापन इसकी असत्यता इसका स्वांग पुनः इसका छलावा इसका बदलने वाला क्रम इसकी चकाचौंध के कारण हमारी बुद्धि को भ्रमित करके रखता है और इसी को माया कहते हैं। हम अपने जीवन में अक्सर यह शब्द सुनते हैं कि संसार तो एक माया है सत्य केवल एक ईश्वर है।

नोट :—यहां बात को समझने में वक्त लगाना क्योंकि एक बार पढ़ कर ऐसा लगता है कि बहुत ही साधारण बात है। लेकिन वास्तव में अध्यात्म की यह एक खास बात है जो साधकों को वर्षों तक भी समझ नहीं आती। यह बात ब्रह्म ज्ञान का प्रमुख हिस्सा है। इसे अब कुछ दूसरे तर्कों द्वारा समझने की कोशिश करेंगे।

अशोक राम में परिवर्तित हो गया। राम राम नहीं हैं, राम का राम होना उसकी वास्तविकता नहीं है। राम अशोक क्यों नहीं लगता ? जो असल है नज़र क्यों नहीं आता ? ईश्वर संसार में परिवर्तित हो गया है। संसार का संसार होना इसकी वास्तविकता नहीं है। संसार ईश्वर क्यों नहीं लगता। विश्व विष्णु क्यों नहीं लगता। चलो इसे समझने का और प्रयास करते हैं। हम एक कागज़ लेते हैं बिल्कुल साफ कागज़ फिर उस पर एक चित्र बना कर रंग भर देते हैं। धीरे-धीरे कागज़ पर एक सुन्दर चित्र बन जाता है। चित्र में रंग हैं आकर्षण है। अब हमारे हाथ में जो है वह एक कागज़ नहीं है, बल्कि रंगों से भरपूर मन को लुभाने वाला चित्र है, चित्र जिसका आधार कागज़ है अब कागज़ नहीं कहलाता बल्कि चित्र कहलाता है। देखने वाला भी कागज़ देखते हुए भी कागज़ नहीं देखता बल्कि चित्र देखता है। कागज़ ईश्वर है चित्र संसार है। ईश्वर गुण रहित है, संसार चित्र की तरह गुणों से भरपूर है इसीलिये आकर्षित करता है। ईश्वर

जब अपने आप को संसार के रूप में बदलता है तो चित्र की तरह गुणों से भरपूर हो जाता है। ये गुण ही रुकावट बनते हैं कि संसार में ईश्वर की प्रतीती नहीं हो पाती। ये गुण तीन तरह के होते हैं। 1. सत्व गुण 2. रजोगुण 3. तमोगुण। सूर्य की किरण जब प्रिज़्म में से गुज़रती है तो सात रंगों में विभाजित हो जाती है। ये रंग भी इन्हीं तीनों गुणों को धारण किये होते हैं जिसमें सफेद या सफेदी युक्त रंग सत्वगुणीं, लाल या लाली युक्त रंग रजोगुणी और काले प्रतीत होने वाले रंग तमोगुणी होते हैं। इन तीनों गुणों के कारण ही भ्रम पैदा होता है जो हमें निर्णय नहीं करने देता, कि यह चित्र ही कागज़ है, जो चित्र में कागज़ को देखने नहीं देता। ये गुण ही हमें रूकावट देते हैं विश्व में विष्णु देखने से। संसार में ईश्वर इन्हीं गुणों के कारण ही दिखाई नहीं देता। ये गुण और इनका आकर्षण और इनके कारण पैदा हुआ भ्रम ही माया कहलाता है। अगर यह माया है तो संसार है। **इसीलिये संसार को माया कहते हैं।**

क्योंकि संसार ईश्वर से बना (बनाया) माया संसार से बनी या बनाई तो ईश्वर ने ही ये माया भी बनाई इसीलिये हमारे पूर्वजों ने इस संसार को ईश्वर की माया ही कहा। क्योंकि माया भ्रम है निरा भ्रम है इसलिये संसार अथवा विश्व को भ्रम ही कहा और जैसे अगर आज अशोक राम है तो कल या अगले दृश्य में कोई दूसरी भूमिका कर सकता है क्योंकि अशोक का राम होना स्थाई नहीं है परिवर्तनशील है और जो आज कुछ है कल को कुछ है इस तरह जो परिवर्तित होता रहता है, नश्वर कहलाता है। इसीलिये इस संसार को स्थाई नहीं नश्वर संसार कहते हैं लेकिन राम से रावण या दूसरी जितनी भी भूमिकायें अशोक करता है उनमें जो अशोक है वो स्थाई है कभी न परिवर्तित होने वाला–सदाबहार स्थाई तत्त्व। और जो हमेशा स्थाई रहने वाला होता है सत्य कहलाता है और जो परिवर्तनशील है, असत्य कहलाता है। इसीलिये ऐसा भी कहा जाता है कि ईश्वर सत्य है, संसार असत्य है।

अब असल में कारण क्या है इस भ्रम का। अज्ञानता! यह मानव की अज्ञानता है कि वह जो वास्तव में एक है उसे दो अथवा अनेक समझता है। और इस अज्ञानता का कारण है **गांठ, उलझन**, अंग्रेज़ी में जिसे Puzzle or confusion कहते हैं। ईश्वर और माया के बीच एक ऐसी गांठ पड़ी हुई है जो खोले भी नहीं बनती तोड़े भी नहीं बनती छोड़े भी नहीं बनती। जैसे कोई बच्चा पतंग उड़ाता है उसकी डोर में गांठें पड़ जाती हैं, डोर उलझ जाती है।

बच्चा गांठें खोलता जाता है लेकिन डोर उलझती जाती है, न गांठें समाप्त होती है, न डोर की उलझन और लालच अथवा मोह ऐसा है कि डोर को छोड़ता भी नहीं, तोड़ता भी नहीं। इसी बात को हम एक-दूसरे तरीके से समझते हैं। अन्धेरे में रस्सी पड़ी हुई है और वहां से गुज़रने वाला व्यक्ति उसे सांप समझ लेता है वह उससे न सिर्फ पीछे हट जाता है बल्कि उससे डरता भी है। अब रस्सी में सांप का भ्रम हुआ, क्यों ? क्योंकि वहां अन्धेरा है। वस्तुत: वहां पर कोई सर्प नहीं है फिर भी प्रतीत हो रहा है। और वो तमाम तरह की शंकायें और भ्रम पैदा हो रहे हैं। जो कि एक असली सांप के कारण हो सकते हैं। अब रस्सी क्या है, ईश्वर। सांप क्या हैं, संसार। अन्धेरा क्या है, अज्ञानता। जीव को अपनी अज्ञानता के कारण ईश्वर ही संसार नज़र आता है जो कि वहां नहीं हैं। जैसे सांप वहां नहीं है ? अब सांप को कैसे दूर किया जाये-उसका एक ही तरीका है, प्रकाश (रोशनी)। अगर प्रकाश वहां पर कर दिया जाये तो सांप खुद व खुद वहां से हट जायेगा और रस्सी प्रकट हो जायेगी। अब सोचने की बात है कि क्या सांप वहां से सचमुच ही कहीं चला गया ? और उसके स्थान पर रस्सी प्रकट हो गई ? ऐसा नहीं है-सांप कहीं गया नहीं क्योंकि सांप वहां था ही नहीं। रस्सी वहां प्रकट नहीं हुई है क्योंकि रस्सी वहां पर पहले ही से मौजूद है। इसी तरह जीव अगर संसार से छुटकारा पाना चाहता है, ईश्वर को प्राप्त करना चाहता है तो उसे प्रकाश अथवा ज्ञान का सहारा लेना होगा। ये ज्ञान उसे कौन करा सकता है, गुरु। जो खुद सारी स्थिति को जानता हो, जो जानता हो यह सर्प नहीं है रस्सी है। ये संसार नहीं ईश्वर है। जो रस्सी और सांप दोनों के गुण धर्म से वाकिफ हो वो ही ज्ञान रूपी प्रकाश द्वारा संसार को अलोप करके ईश्वर को प्रकट कर सकता है। वास्तव में संसार कहीं अदृश्य हो कर चला नहीं जाता क्योंकि संसार तो होता ही नहीं। ईश्वर कहीं दूसरी जगह से आ कर प्रकट नहीं होता क्योंकि ईश्वर तो वहां पहले से ही मौजूद है। जो व्यक्ति ज्ञान का सहारा लेकर संसार से छुटकारा पा लेता है और ईश्वर दर्शन करता है और उसे प्राप्त कर लेता है वही जीव मुक्त हुआ (मोक्ष का अधिकारी) कहा जाता है।

सो हमारा सवाल था, विश्व क्या है विष्णु (ईश्वर) क्या है जीव (मानव) क्या है और तीनों का आपस में क्या सम्बन्ध है ? हमने पीछे इसी सम्बन्ध में जो अपनी तुच्छ बुद्धि अनुसार चर्चा की है। उसके अनुसार यह संसार अथवा

विश्व कुछ भी नहीं है बल्कि यह ईश्वर अथवा विष्णु ही है। इस सम्बन्ध में एक छोटी सी उदाहरण और लेकर आगे बढ़ेंगे। आपने एक कहावत यह भी सुनी होगी कि यह संसार ईश्वर की परछाई है, प्रतिबिम्ब है।

इसको हम अपनी रोज़ की एक घटना से समझते हैं। हम रोज़ाना ही दर्पण देखते हैं। दर्पण जिसमें पहले से कुछ नहीं होता बिल्कुल साफ। लेकिन जब हम उसके सामने खड़े हो जाते हैं तो अपने आप को ठीक उसी तरह से दर्पण के भीतर पाते हैं जैसे हम बाहर हैं। जबकि वास्तविकता यही रहती है कि हम कदापि दर्पण के भीतर नहीं होते हम वही होते हैं यहां हम हैं, दर्पण के बाहर। लेकिन यह एक सत्य घटना है कि हम दर्पण के भीतर होते हैं। न होते हुए भी होते हैं। अब जो दर्पण के भीतर है वह झूठ है, असत्य है, जल्दी मिट जाने वाला है, धोखा है, माया है। जो दर्पण के बाहर है, सत्य है, मिटने वाला नहीं है। दर्पण के भीतर संसार है। दर्पण के बाहर ईश्वर है।

इस तरह यह तय है कि संसार प्रतिबिम्ब और ईश्वर बिम्ब है।

पीछे की चर्चा में हमने जाना कि यह विश्व कुछ भी नहीं बल्कि खुद ईश्वर है। इसलिये अगर हमने ईश्वर दर्शन करना हो तो हमें उसे देखने अथवा ढूंढने कहीं दूसरी जगह नहीं जाना बल्कि वह तो हर वक्त हमारे सामने है। हमारे पास इस विश्व के रूप में। गलती से या अज्ञानतावश जिस विश्व को हम असत्य, मिथ्या, झूठ, नश्वर, न रहने वाला, धोखा और न जाने किन-किन शब्दों से बुलाते हैं, दरअसल यही विश्व उस निराकार ईश्वर का साकार रूप है, प्रकट रूप है। यह विश्व उतना ही सत्य है उतना ही मीठा है, उतना ही रसमय है, उतना ही अमृतमय है जितना ईश्वर या विष्णु। दरअसल इस विश्व को भिन्न समझना ही हमारी अज्ञानता है। जैसे हमें भली-भान्ति विदित (ज्ञात) है कि ईश्वर सत्य स्वरूप है, ईश्वर का इसी लिये एक नाम सत्य भी है। सत्य हमेशा मंगलकारी होता है। किसी भी समय में किसी भी स्थान पर किसी का भी सत्य अमंगल नहीं करता। और जो हमेशा मंगलकारी होता है वही सुन्दर होता है सबके मन को भा लेता है। अपनी तरफ खींच लेता है। अत: ईश्वर जो कि सत्य है, हमेशा मंगल करता है इसीलिये सुन्दर भी है। इसी कारण से **ईश्वर का एक नाम सत्यम् शिवम् सुन्दरम् भी है।** (शिव का अर्थ है मंगल करने वाला) तो अब यह विश्व जो कि ईश्वर का ही प्रारूप है, प्रकट रूप है। साकार रूप है तो इसमें वही ईश्वरीय गुणों का होना स्वाभाविक है। अत: यह

संसार भी सत्य स्वरूप है सदा मंगलकारी है और सदा ही सुन्दर है। अत: यह संसार भी सत्यम् शिवम् सुन्दरम् ही है।

हमारे पास जो मुख्य सवाल थे उनमें विश्व, विष्णु और विराट की जानकारी के अलावा हमारा इस विश्व में क्या स्थान है और इससे क्या सम्बन्ध है, प्रमुख थे। विराट की जानकारी से पहले हम इस विश्व में अपनी भूमिका के बारे में जानेंगे। हम जानेंगे कि हमारा ईश्वर (विष्णु), विश्व और विराट से क्या सम्बन्ध है। जब कोई जिज्ञासु साधना पथ पर चलता है तो उसके मन में एक ही सवाल उठता है कि किसी भी तरीके से इस संसार की सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सके। वह जानना चाहता है कि आखिर यह संसार है क्या? कौन इसको चलाता है? क्या ईश्वर नाम की कोई शक्ति इस ब्रह्माण्ड में हैं या फिर सिर्फ कल्पना मात्र ही है यह सब। क्योंकि वह समझता है कि शायद यह सब जान लेने के बाद वह एक सफल व सुखी जीवन जी सकेगा। उसका ध्यान सारे संसार की तरफ जाता है लेकिन खुद की तरफ कभी नहीं। वह सब कुछ जान लेता है कि यह दुनिया क्या है इसमें कब क्या घटना घट रही है। क्या बन रहा है क्या नष्ट हो रहा है क्या क्या चीज़ कहां कहां पर है, ईश्वर के बारे में काफी कुछ जान लेता है, कैसे उसकी पूजा, अर्चना, वन्दना की जाती है, कैसे दान दिया जाता है और कैसे पुण्य कर्म किये जाते हैं लेकिन खुद के बारे पूर्णत: अनभिज्ञ रहता है। लापरवाह रहता है। कभी कोशिश नहीं करता यह जानने की आखिर वह खुद क्या है? कहां से आया है कहां जाना है आखिर इस जीवन का मकसद (उद्देश्य) क्या है? क्या बस जीवन इतना ही है कि खाया-पीया, सो गये, बचपन गुजारा, जवानी गुजारी, बुढ़ापा बिताया और मर गये। क्या यही सब जीवन है। अरे! इतना तो जानवर पशु-पक्षी भी करते हैं। कई-कई तो बहुत मर्यादित ढंग से करते हैं। मानव से कहीं अधिक। फिर मानव में और दूसरे पशु पक्षियों में क्या अन्तर हैं। क्या हमारे शास्त्रों ने इस मानव रचना को यूँ ही एक ईश्वर की बेहतरीन रचना कह दिया। जन्म हुआ, कमाया खाया, वंश वृद्धि की और इसके साथ-साथ नफरत, लालच, क्रोध, मोह, अहंकार किया, यह सब तो आदमी तो क्या जानवर भी करते हैं। फिर कोई जिज्ञासु कहता है नहीं, नहीं, इन्सान में बुद्धि भी है वह अपनी बुद्धि का उपयोग करके अपना भला बुरा देख लेता है लेकिन देखो न इस मामले में चींटी भी कम नहीं। उसके आगे नमक रखो, कभी नहीं खायेगी। उसका रास्ता रोको वह रास्ता बदल

लेगी। और तो और देखो चींटियों का झुण्ड कैसे एक लाइन में अनुसाशित तरीके से चलती हैं। आदमी से भी बेहतरीन। ये तो एक चींटी की बात है, सभी दूसरे प्राणी इतने ही बुद्धिमान हैं आदमी से भी अधिक।

फिर बात आ जाती है कि आदमी अपने आप को तरक्की के रास्ते पर चला कर ईश्वर का चिन्तन कर सकता है। पूजन कर सकता है इत्यादि। लेकिन क्या इतना करके ही इन्सान, जानवर से बेहतर कहला सकता है। और जो भी इन्सान यह सब कर रहा होता है वह अपने आप को धार्मिक व आध्यात्मिक कहलाता है। कभी सोचा कि जो मानव इतना सब कुछ कर रहा है। क्या वह खुद को आध्यात्मिक कहलाने योग्य हो गया। अरे ये क्रियायें तो सिर्फ धार्मिक क्रियायें हैं बहुत से सिखाये हुए हाथी भी ये सब कुछ कर लेते हैं। आदमी की खूबी इसी में है कि वह अपने आप को आध्यात्मिक कहलाये सिर्फ धार्मिक नहीं। धार्मिक होना और अध्यात्मिक होना बहुत अन्तर है दोनों में। एक आध्यात्मिक आदमी ही इस सृष्टि में दूसरी प्रजातियों से बेहतर होता है। आध्यात्मिक का अर्थ है जो आत्मा का अध्ययन करता है यानि खुद का अध्ययन। Self study वह जाने ''मैं क्या हूँ'' ''कौन हूँ'' कैसे हूँ कहाँ हूँ, कब से हूँ ? लेकिन यही सब करने से वह वंचित रह जाता है। एक छोटी सी कहानी का ज़िक्र मैं यहां कर रहा हूँ जो संयोगवश मैंने थोड़े ही दिन पहले पढ़ी। एक सूफी सन्त जब भ्रमण पर थे तो एक गांव में उन्होंने देखा कि वहां के लोग काफी धार्मिक प्रवृत्ति के हैं लेकिन वे इस बात पर बहुत हैरान हुए कि उनमें से कोई भी आत्म चिन्तन न करने वाला था। उन्होंने देखा कि सब खुदा को तो मानते हैं, जानते हैं लेकिन खुद को कोई नहीं पहचानता। उन्हें एक तरकीब सूझी, सबको रास्ते पर लाने के लिये। उन्होंने वहां खड़े हो कर शोर मचा दिया कि खुदा के हाथ में अंगूठी पहना दो, खुदा को कोई वस्त्र पहना दो। सबने उनकी आवाज़ सुनी। सभी ने सोचा कि फ़कीर कोई पहुँचा हुआ लगता है। इसकी खुदा से ज़रूर वाकफियत होगी। इससे अच्छा मौका फिर न मिलेगा। खुदा को खुश करने का। सभी अपने घरों से अंगूठी और वस्त्र ले कर फ़कीर के पास पहुंच गये। कहने लगे, हम खुदा को अंगूठी व वस्त्र पहनाना चाहते हैं। हमें जल्दी खुदा के पास ले चलो। फ़कीर बोले तुम्हें कहीं नहीं जाना है। मेरा हाथ खुदा का हाथ है। तुम इसमें अंगूठी पहना दो। सभी भौंचक्के रह गये। गालियां देने लगे कि तू हमें खुदा के नाम पर ठगने आया है। फ़कीर बोला

नहीं ऐसा नहीं है–अच्छा तुम बताओ कि यह धरती किसकी है, तुम्हारी या मेरी, सब बोले खुदा की। अच्छा अब बताओ– ये घर ये पेड़-पौधे ये सब साजो-सामान किसका है ? तुम्हारा है या मेरा ? फिर सबने कहा खुदा का। अच्छा ये शरीर किसके हैं फिर सबने कहा कि खुदा के हैं। अच्छा अगर आपके शरीर खुदा के हैं तो मेरा शरीर किसका है, फिर बोले खुदा का। अच्छा अगर मेरा शरीर खुदा का है तो मेरा हाथ किसका है, खुदा है। अगर ये खुदा का है तो इसमें अंगूठी पहनाने में तुम्हें क्यों एतराज़ है? कइयों को फ़कीर की बात समझ में आई। उन्होंने फ़कीर के हाथ को देखा फिर अपने हाथ को देखा, मन में ही मुस्कराये और फ़कीर से याचना (प्रार्थना) करने लगे कि हमें सही रास्ते का ज्ञान करवा दो। लेकिन कई अभी भी फ़कीर को भला बुरा कह रहे थे।

हमें अपने जीवन में सही मायनों में अगर खुदा के दर्शन करने हैं तो खुद को अवश्य समझना होगा। खुद को जाने बिना खुदा को भी न जाना जा सकेगा।

एक प्रयास खुद को जानने का :–

भौतिक स्तर–भौतिक स्तर पर हमारे पास एक शरीर (Body) है जिसमें ऊपरी तौर पर काम करने वाले हाथ, पैर मुँह आँख, नाक, कान, जिह्वा, मल मूत्र त्यागने के उपकरण और त्वचा प्रमुख अंग हैं। जिनको दो विभागों में बांटा गया है जिसमें पहला विभाग (1) आँख (2) कान (3) जिह्वा (4) नाक (5) त्वचा का है। इन पांचों को मिलाकर ज्ञान इन्द्रियां कहते हैं। ये पाँचों ही हर तरह से मानव को जानकारी मिलने में सहायक होते हैं। आँखों से देख कर, कानों से सुन कर, जिह्वा से स्वाद लेकर, नाक से सूँघ कर और त्वचा से स्पर्श करके मानव संसार की सभी वस्तुओं की जानकारी हासिल करता है।

दूसरे विभाग में–हाथ, पैर, मुँह, गुदा और उपस्थ (जननेन्द्रियां) ये पाँच कर्म इन्द्रियां हैं। इन पांचों के द्वारा मानव अपने जीवन के हर तरह के कार्य को अन्ज़ाम देता है तथा इन्हें कर्म इन्द्रियां कहते हैं। पहली और दूसरी इन्द्रियां मिल कर मानव की दस इन्द्रियां कहलाती हैं। मानव शरीर में यह दसों इन्द्रियां ही दृश्यमान (Visible) हैं। लेकिन इन दसों को आदेश देने वाला, उत्साहित करने, प्रेरित करने और कार्यरत करने वाला जो उपकरण है वो न दिखाई देने वाला होता है और उसे मन कहते हैं। क्योंकि बाकी सभी इन्द्रियों पर यह शासन करता है। इसे इन्द्रियों का राजा भी कहते हैं और इन्द्र भी कहते हैं। यह

दसों स्थूल जगत की स्थूल इन्द्रियां हैं। मन का एक सहयोगी होता है, चित्त। जो कि भिन्न-भिन्न तरह की वृतियों को उठाता है या धारण करता है। यह चित ही होता है जिसके भीतर जब कोई वृत्ति (इच्छा) उठती है तो वह उसकी पूर्ति के लिये मन से सम्पर्क स्थापित करके, कार्य अनुसार दसों इन्द्रियों में से जो उस कार्य के योग्य होती है उसे दिशा निर्देश देकर कार्यरत्त करता है। यह भी सूक्ष्म जगद (शरीर) का एक हिस्सा होती है। यहीं पर एक बात और जान लें जो दसों इन्द्रियां शरीर का स्थूल हिस्सा बनाती हैं और इसके अलावा शरीर के दो हिस्से और होते हैं–1. सूक्ष्म शरीर 2. कारण शरीर।

मन और चित्त के अलावा दो और सूक्ष्म शरीर के हिस्से होते हैं जिनमें 1. हृदय 2. बुद्धि। यह हृदय वो हृदय नहीं जिसे हम कृत्रिम हृदय (Biological Heart) कहते हैं जो कि धमनियों में रक्त को प्रवाहित करता है बल्कि यह हृदय ही एक ऐसा उपकरण है जो कि चित्त में उठने वाली वृत्तियों का भावनात्मक स्तर पर निरीक्षण करता है। जैसे किसी पर रहम करना, रिश्ते नातों और सम्बन्धों को नज़रअन्दाज़ न होने देना आदि सब इस हृदय के ही कार्यक्षेत्र में आते हैं।

दूसरा बुद्धि (Intelligence) :–मानव द्वारा लिये जाने वाले समस्त फैसले, अच्छे और बुरे की पहचान करना, ज्ञान और अज्ञान का निरीक्षण करके उसके नतीजे को अपने भीतर समा के रखना, ज्ञान और विज्ञान का सहारा लेकर मानव का उत्थान करना। ये सभी सूक्ष्म शरीर के इसी बुद्धि नामक उपकरण के कार्यक्षेत्र में आते हैं। और ये तीनों (मन, हृदय और बुद्धि) मिल कर ही मानवीय अन्त:करण का निर्माण करते हैं और जैसा यह अन्त:करण निर्मित करते हैं वैसा ही मानव का चरित्र प्रकट हो जाता है। और ये तीनों ही सूक्ष्म शरीर कहलाते हैं। इसके वाद है **कारण शरीर**–इसे ही आत्मा कहते हैं। इसे शक्ति का स्रोत भी कहते हैं (Source of Energy) यह एक ऐसा न दिखाई देने वाला शरीर का अंग होता है जिसकी मौजूदगी में बाकी दोनों तरह के शरीर और उनके सभी प्रकार के हिस्से अपने-अपने कार्य कर सकते हैं। जैसे अन्धेरे में किसी भी प्रकार का कार्य होना सम्भव नहीं है जबकि प्रकाश में कोई भी काम किया जा सकता है। इसीलिये इस आत्मा को **प्रकाश** भी कहा जाता है क्योंकि इसके न रहने पर शरीर एक अन्धेरी गुफा में बदल जाता है। फिर आंखें देख नहीं सकतीं, कान सुनते नहीं, हाथ पैर हिलते नहीं, जुबान बोलती नहीं, मुँह खाता नहीं। यह आत्मा वास्तव में शरीर में खुद कोई कार्य

नहीं करती लेकिन शरीर के समस्त कार्य इसी की मौजूदगी में ही होते हैं। ये आत्मा स्वयं प्रकाशित है। इसे खुद को प्रकाशित करने के लिये किसी दूसरे के प्रकाश पर निर्भर नहीं होना पड़ता। बल्कि बाकी सब वस्तुओं का प्रकाश इसके प्रकाश पर निर्भर होता है जैसे रात्रि में दिखाई देने वाले चांद का प्रकाश सूर्य के प्रकाश पर ही निर्भर होता है। और तो और संसार की सभी वस्तुएं जो कि प्रकाशमय प्रतीत होती हैं सिर्फ सूर्य के प्रकाश से प्रकाश उधार लेकर ऐसा कर पाती हैं अन्यथा उनमें ऐसी योग्यता नहीं होती है। लेकिन मानव के भीतर निवास करने वाली यह अदृश्य शक्ति न सिर्फ मानव पर सम्पूर्ण तौर पर अधिकार जमा कर रखती है बल्कि उसे एक अवधि विशेष तक (जीवन भर) अपने प्रकाश से प्रकाशित रखती है, आत्मा कहलाती है। क्योंकि इसके समस्त गुण धर्म, आचार व्यवहार सब कुछ परमात्मा के जैसे होते हैं। इसी कारण यह उस परमात्मा का अंश भी कहलाती है। क्योंकि जो जिसका अंश होता है उसमें अंशी के गुण होना स्वाभाविक ही है। जिस तरह ईश्वर, समस्त विश्व पर राज्य करता है, उसी तरह यह आत्मा भी शरीर पर राज्य करती है। जिस तरह वह ईश्वर तीनों कालों में तीनों स्थानों पर हमेशा विद्यमान रहता है उसी तरह ये आत्मा भी हर समय अपनी प्रभुसत्ता बनाये रखती है। जिस तरह ईश्वर सर्वशक्तिमान कहलाता है यह आत्मा भी सर्वशक्तिमान कहलाती है। इसी की शक्ति से ही शरीर के समस्त हिस्से शक्तिशाली रहते हैं। जब यह अपनी शक्ति के प्रवाह को रोकती है या कम करती है उसी वक्त यह शरीर भी अपने आपको अस्मर्थ व शक्तिहीन महसूस करता है। यही आत्मा शरीर को जब शक्ति लुटाती है तो प्राण कहलाती है। यह प्राण शरीर में पांच प्रकार से कार्य करते हैं। श्वास (वायु) को अन्दर लेते हैं, बाहर छोड़ते हैं, खाया हुआ (अन्न) पचाते हैं, मल त्यागते हैं और शरीर के अंदर रुक करके शरीर को ज़रूरी चेतना और स्फूर्ति देते हैं। जब श्वास अन्दर लेते हैं इसे प्राण कहते हैं जब श्वास छोड़ते हैं अपान कहते हैं जब खाना पचाते है समान कहते हैं जब मल त्यागते है व्यान कहते और जो शरीर को चेतना देते हैं उदान कहते हैं। जब शरीर समाप्त होता है तो ये उदान वायु ही सबसे अन्त में निकलती है। यही आत्मा जब तक शरीर के साथ सम्बन्ध बनाये रखता है तभी तक यह शरीर समस्त कार्य करता है। इस का सम्पर्क टूटते ही शरीर की समस्त हलचल बन्द हो जाती है। दूसरा शरीर ने क्या कार्य करना है क्या नहीं करना इसमें इसकी कोई इच्छा जा दखल अन्दाजी नहीं होती इसीलिये शास्त्रों में इस आत्मा को

साक्षी कह कर भी सम्बोधन किया गया है। जैसे एक अन्धेरे कमरे में प्रकाश के लिये एक बल्ब जगाया जाता है। प्रकाश में अथवा कमरे में बैठने वाले लोग प्रकाश के होते ही अपना कार्य शुरू कर देते हैं। लेकिन उन लोगों ने क्या करना है ? क्या नहीं करना है ? और कितनी देर तक करना है ? इन बातों का न तो बल्ब, न उसकी रोशनी, न तो तय करते हैं और न ही दखल अन्दाजी करते हैं लेकिन होने वाले समस्त कार्यों पर अपनी नज़र जमाये रखता है साक्षी बना रहता है (Witness) और वहां होने वाले किसी भी कार्य का प्रकाश के ऊपर कोई प्रभाव नहीं होता। अगर कोई सद्कर्म हो रहा तब भी अगर कोई दुष्कर्म हो रहा हो तब भी।

गीता में इसी आत्मा को क्षेत्रज्ञ कहा गया है और शरीर को एक क्षेत्र। क्योंकि ऊपर बताई गई दोनों बातों में द्वैत (Dual) भावना रहती है जिसमें एक कार्य करने वाला है दूसरा उसका साक्षी है। लेकिन अद्वैत भावना में (Non-Dual) ऐसा नहीं है। जैसा हमने पहले भी एक चर्चा में यह जाना कि परमात्मा ही यह विश्व बना हुआ है, उसी तरह उसका अंश आत्मा ही यह शरीर बना है। जैसे पेड़ बीज में से ही निकलता है जब तक बीज को धरती में आरोपित नहीं किया जाता तब तक वह विशाल पेड़ बीज के भीतर सिकुड़ कर बैठा रहता है। बीज और पेड़ दोनों एक ही हैं पेड़ बीज का फैलाव है या बदला हुआ रूप है या यूँ कहिये एक ही चीज़ के दो नाम हैं जब तक वह सूक्ष्म था बीज था ज्यों ही वह विशाल हुआ पेड़ कहलाया।

इसी तरह जब तक वह निराकार है, ईश्वर है। लेकिन ज्यों वह खुद को प्रकट करता है संसार अथवा विश्व कहलाता है। इसी तरह उसी ईश्वर का अंश भी निराकार रहता है आत्मा कहलाता है लेकिन, जब वही अपने आप को कोई रूप देता है, खुद को प्रकट कर लेता है तो शरीर है। अब जानने वाली चीज़ यह भी है जब अंश फैलता है तो शरीर होता है और जब अंशी फैलता है तो ब्रह्मांड होता है वास्तव में शरीर और संसार (ब्राह्मांड) दोनों एक ही हैं क्योंकि, दोनों का कारण एक ही है। जैसे लोहे के बड़े टुकड़े से एक भारी भरकम गॉडर बन जाता है। और उसी लोहे के एक छोटे अंश से एक छोटी सी सूई बन जाती है। परन्तु, इस बात को मानना ही पड़ेगा गॉडर और सूई दोनों में है एक ही लोहा। परन्तु अवस्था के कारण अलग अलग नज़र आ रहें है लेकिन फिर भी है दोनों एक ही। इसी लिये शास्त्रों में ऐसा कहा गया कि **''जो अण्डे सोई ब्राह्मांडे।''**

अब रचना के आधार पर या वजूद के आधार पर देखें कि सचमुच ही जो अण्डे सोई ब्राह्माडे प्रभावित है भी या नहीं।

संसार में हमें जो कुछ भी नज़र आ रहा है यह सब सिर्फ पांच चीज़ों (तत्वों) का ही मिश्रण हैं। इन पाचों तत्वों का निर्माण एक ही पल में एक समय में एक ही साथ हुआ।

(इस बात को थोड़ा गौर से समझना क्योंकि इसी के साथ हम सृष्टि निर्माण को भी समझ पाते हैं।)

ये पाँच तत्त्व हैं 1) आकाश 2) वायु 3) अग्नि 4) जल 5) धरती

वह ईश्वर जो अपने आप में निराकार निर्विकल्प अवस्था में स्थित था उसकी इच्छा हुई कि मैं साकार हो जाऊँ (उसको यह इच्छा हमारी तुच्छ इच्छाओं की तरह नहीं होती उसकी यह एक स्वाभाविक क्रियात्मक इच्छा है (जैसे फूल सुगन्धि देता है इसकी यह क्रिया इस बात पर निर्भर नहीं करती कि वह इच्छा करेगा तभी सुगन्धि देगा) जैसे कछुआ अपने सिकोड़े हुये हाथ पैर मुंह अपने कवच से बाहर निकालता है उसी तरह उस बीज परमात्मा निराकार ईश्वर से एक ध्वनि (sound) करते हुये ये पांचो चीज़ें प्रकट हो उठी। सबसे पहले सबसे सूक्ष्म और सबसे विशाल आकाश प्रकट हुआ फिर उसी क्षण उसमें क्योंकि खालीपन था। वायु वेग से चलने लगी। उसी के वेग के कारण उष्णता (अग्नि) प्रकट हो गई। अग्नि के कारण वायु की नमी जल बन कर बहने लगी। फिर जब जल स्थिर हुआ तो उसमें धरती प्रकट हुई। इसमें सबसे सूक्ष्म सबसे बड़ा आकाश उससे छोटा उससे भारी वायु, उससे छोटा उससे भारी अग्नि, उससे छोटा उससे भारी जल फिर सबसे छोटा सबसे भारी धरती तत्व है। ये पाँचों तत्व एक पक्की मिकदार में (Fixed Ratio) अपने अपने स्थान पर अपने निर्माण से लेकर अब तक पक्के तौर पर बन्धे हुये हैं और कभी इधर उधर नहीं होते। जो शक्ति इन पांचों तत्वों में वान्छित सन्तुलन बनाये रखती है, उन्हें अपने अपने स्थान पर कायम रखती है और इन्हें कार्यरत रखती है वैज्ञानिक उसे चुम्बकीय शक्ति कहते हैं ईश्वर को मानने वाले उसे ईश्वरीय शक्ति कहते हैं और उसी शक्ति को अब ''श्री सत्य साई बाबा जी'' ने नया नाम दिया है, प्यार। वे कहते हैं कि ''**प्रेम ही ईश्वर है**'', वास्तव में प्रेम ही एक ऐसी शक्ति है जो कि सम्पूर्ण ब्राह्मांड को बान्ध कर रखती है। सन्तुलन में रखती है। इसी शक्ति ने जब इस ब्राह्मांड की रचना की ब्रह्मा कहलाया, जब इन पांचों तत्वों को सन्तुलित करके कायम किया विष्णु कहलाया और जब

इनका सन्तुलन टूटा और इनको बल पूर्वक फिर से स्थानान्तिरत (Readjustment) किया तो शिव कहलाया। एक ही शक्ति ने तीन तरह से काम किया अत: तीन ही नामों से जाना गया।

हमारे मानव शरीर में भी यही पाँचो तत्व पाये जाते हैं हमारे भिन्न अंग इन पाँचों का ही प्रतिनिनिधत्व करते हैं हमारे कान आकाश का, त्वचा वायु का, आंखे अग्नि का, जिह्वा जल का और नाक धरती का प्रतिनिधित्व करते हैं। हमारे शरीर में भी ये पांचों उसी परमात्मा के अंश आत्मा के स्वाभाविक इच्छा के कारण फलीभूत होते हैं। यहां भी आत्मा जब शरीर में निर्माण कार्य करती है ब्रह्मा होती है जब निर्मित हो चुकी वस्तुओं की देख रेख करती है विष्णु होती है। जब शरीर में विपत्तियों का सामना करती है तो शिव।

आत्मा विश्लेषण पर कुछ और तथ्य।

सृष्टि में हर मानव की रचना एक ही प्रकार से हुई है। जिन पांचों तत्वों से ब्रह्मांड की स्थापना हुई है उन्हीं पाँच तत्वों से यह मानवीय शरीर की रचना भी संभव हुई है। और जिस छठे तत्व से ये पांचो तत्व ब्रह्मांड में टिके हुये हैं सजीव (Active) हैं उसी छठे तत्व से (ईश्वरीय शक्ति ie energy or Magnetic force ie Love) इस शरीर के पांचों तत्व भी सन्तुलन में रहते हैं और सजीव रहते हैं वर्णा जिस प्रकार से जब यह तत्व शरीर को छोड़ता है तो वह पांचों तत्व निर्जीव हो जाते हैं, जड़ हो जाते हैं, यह शरीर शव में बदल जाता है उसी प्रकार जब भी वही ईश्वरीय तत्व इस ब्राह्मांड को छोड़ता है तो यह संसार भी शव में बदल जाता है। इसी कारण से इस संसार का एक नाम विश्व है जो इन अर्थों में भी सार्थक होता है– वि + शव = विशाल शव। इस तरह हम एक और जानकारी को हासिल करते हैं कि अगर ईश्वरीय शक्ति इस ब्रह्मांड से जुड़ी रहती है यह संसार जगत बना रहता है शव नहीं विश्व बना रहता है। उसी तरह जब तक यह शक्ति शरीर में प्रवाहित होती रहती है तब तक यह जड़ सरूप शरीर चेतन बना रहता है शव, शिव) (शव + शक्ति) बना रहता है। इस तरह यहां हमें एक खास जानकारी हासिल होती है कि यह चेतन स्वरूप मनुष्य ही शिव है। साथ ही साथ हमें इस बात को भी ध्यान में रखना चाहिये कि अगर हम शिव कहलाना चाहते हैं, तो हमें शिव जैसे काम भी करने चाहिये और शिव का एक ही काम है, कि सदैव दूसरों को भलाई करना अपना हित छोड़कर भी दूसरे की भलाई करना यह भी नहीं सोचना कि जिसका मैं भला करने वाला हूँ या कर रहा हूँ कल यह मेरे साथ

मधुर सम्बन्ध रखेगा भी या नहीं। यह जानते हुये भी भलाई करना है कि सामने वाला सदबुद्धि पुरुष नहीं है। ऐसा विशाल हृदय कि अपने लिये जो लंका बनाई वही रावण को खुश हो कर उसकी तपस्या के फलस्वरूप दान में दे दी।

इसके साथ ही हमें यह बात भी कभी अनदेखी नहीं करनी चाहिये कि जिन पांचों तत्वों और उनके साथ छठे तत्व आत्मा या ईश्वरीय शक्ति से मेरा वजूद संभव है उन्हीं तत्वों से दूसरे सभी प्राणियों का वजूद संभव है। मुझमें और दूसरे प्राणियों में वस्तुत: कोई भेद नहीं है। [We all are one] हम सभी एक एक शरीर मिल कर इस विश्व की आकृति को पूरा करते हैं। जैसे हमारे अंग भिन्न भिन्न होते हुये भी सिर्फ एक ही शरीर को पूरा करते हैं दो हाथ, दो पैर, पेट, सिर, नाक, मुंह, आखें, टांगे, वायु ये सब अपने अपने आकार के होते हुये भी एक ही शरीर को रचना को पूरा करते हैं और अन्त में एक ही शरीर कहलाता है इसी तरह ये सभी प्राणी अलग अलग होते हुये भी एक ही विश्व को सम्पूर्ण करते हैं और अन्त में एक ही विश्व कहलाता है। और हमे दूसरे प्राणियों के बारे में इस तरह से सोचना है जैसे हमारा एक ही दिल या दिमाग बाकी शरीर के दूसरे अंगों के बारे में सोचता है हमारे हाथ हमारे पैरों से नफरत नहीं करते हमारा मुंह हमारे पेट से या हमारा पेट शरीर के दूसरे हिस्सों से नफरत नहीं करता इस तरह हमें भी दूसरे प्राणियों से नफरत नहीं करनी चाहिये। लेकिन यह तभी संभव है अगर हम इन पांचों तत्वों को और फिर छठे तत्व की भूमिका और विस्तार को भली प्रकार से समझ लें। क्योंकि हम इन्हीं बातों को समझ नहीं पाते इसी लिये हम अपनी शारीरिक रचना और क्षमता को बेहतर मान कर एक निम्न स्तर के अहं (Ego) की पालना कर लेते हैं तथा दूसरे सभी प्राणियों की घटिया रचना और बुद्धि को तुच्छ जान कर उन से नफरत करते हैं या कम से कम उनसे खुद को बेहतर साबित करते हैं और यहीं से हमारे दुखमय संघर्ष की शुरूआत हो जाती है। अगर हम सबको अपने ही स्तर का समझ लें तो कम से कम नफरत की वजह से होने वाला दुख हमें परेशान नहीं कर पायेगा।

मुश्किल की घड़ी में या कभी कभी बातों ही बातों में अक्सर हम कह देते हैं कि हम जीवन में शान्ति चाहते हैं ज्यादा नहीं तो मन की शान्ति (आत्मिक शान्ति) तो जरूर चाहते हैं। लेकिन क्या कभी इस सम्बन्ध में प्रयास किया। हम दूसरों को दबा कर अपना आधिपत्य बना कर सोचते हैं कि यह सब शान्ति प्राप्ति के लिये किया जा रहा है। आन्धी उठने से पहले और आंधी

बन्द होने के बाद भी एक चुप्पी होती है। क्या इसे शान्ति कहते हैं ? नहीं इसे सन्नाटा कहते हैं शान्ति में प्रेम होता है विश्वास होता है और सन्नाटे में डर होता है घबराहट होती है और हम सन्नाटे को ही शान्ति को संज्ञा दिये जा रहे हैं। इस सम्बन्ध में अगर हम सचमुच ही कुछ करना चाहते हैं तो उपनिषदों में दिया गया एक मन्त्र जो कि व्यावहारिक जीवन में सुख शान्ति के लिये परम उपयोगी है उसे अपनाना होगा।

ॐ सहना ववतु सहनौ भुनक्तु
सहवीर्यं करवावहै
तेजस्विनावधीतम् अस्तु
मां विद्विषावहै
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

इसमें हम भगवान से प्रार्थना करते हैं कि हे भगवान हम मिल जुल कर रहें, जो एक के पास हो दूसरों से बांट लें। मुश्किल में मिल जुल कर वीरता पूर्वक काम करें। किसी से कोई बात छुपायें न और किसी से नफरत न करें। हे भगवान जीवन में तीनों स्तर पर हम शान्ति प्राप्त करें। ओह-लेकिन यह सिर्फ मन्दिर में बैठ कर गाने वाली प्रार्थना नहीं हैं यह तो व्यवहार में लाने वाला मन्त्र है। व्यावहारिक स्तर पर सबसे नफरत करते हैं क्योंकि खुद को बुद्धिमान कहते हैं, जब जिससे नफरत करते हैं तो उसके साथ मिल कर कैसे बैठेंगे, क्या बांट लेंगे उससे ? सब कुछ तो उसी से छुपाना है कुछ भी तो नहीं बताना है, जीवन के तीनों स्तरों पर तो क्या एक भीं स्तर पर शान्ति नहीं। अरे एक प्रयास करके तो देखो, जब तक प्यार नहीं करोगे कुछ भी सार्थक नहीं होगा कुछ भी नहीं। एक ही ईश्वर (शक्ति) सभी प्राणियों में निवास करता है। इस सम्बन्ध में कुछ और जानकारी हेतु हमारे शास्त्रों में जो उदाहरण दिये गये हैं इस प्रकार हैं—

एक कुम्हार खेत से दो बोरी मिट्टी लाकर उससे अलग अलग प्रकार की वस्तुएं बनाता है। उनमें कुछ छोटे बड़े घड़े हैं कुछ एक हाथी, घोड़े, कुत्ते, बन्दर और साथ ही साथ आदमी की आकृतियां भी बनाता हैं। इन सभी वस्तुओं को जब बाज़ार में बेचने के लिये लाया जाता है, तो खरीदने वाला ये कहता है कि भाई साहिब मुझे एक घोड़ा दे दो या बन्दर दे दो। बेचने वाला भी घड़े को घड़े की कीमत पर, घोड़े को घोड़े की कीमत पर, आदमी को आदमी की कीमत पर बेचता है। लेकिन साधक के ज्ञान हेतु यह एक परम आवश्यक

जानने योग्य बात है कि कुम्हार ने जो भी बनाया, मिट्टी से बनाया। असलियत में घोड़ा-घोड़ा नहीं है मिट्टी है, घोड़े जैसा प्रतीत हो रहा है। लेकिन परिस्थिति वश न बेचने वाला न खरीदने वाला, दोनों ही इसे मिट्टी नहीं कहते घोड़ा कहते हैं जबिक घोड़ा, घोड़ा बनने से पहले मिट्टी था और टूटने के बाद फिर मिट्टी होने वाला है। दूसरी जानने योग्य बात यह है कि जितनी भी वस्तुयें कुम्हार ने बनाई सभी एक ही थैले की मिट्टी से बनाई, घोड़े में, आदमी में बन्दर में एक ही प्रकार की मिट्टी है और यह सारी मिट्टी एक ही खेत से आई। इसी प्रकार यह सारी सृष्टि भी एक ही ईश्वर (शक्ति) के द्वारा रची गयी।

कुम्हार ने कुछ घड़े बनाये और कुछ खिलौने। हर घड़े के अन्दर एक खाली जगह हैं और इसी तरह हर खिलौने के अन्दर भी एक खाली जगह है। यह खाली जगह चाहे घड़े में है चाहे खिलौने में कहां से आई। असलियत में इन सबके बनने से पहले ही एक विशाल खाली जगह थी जो अब छोटे-छोटे हिस्सों में बँट गई। यह कहीं से भी आई नहीं, ये पहले ही से वहां मौजूद है। इन सबके टूटने के बाद भी यह खाली जगह कहीं चली नहीं जायेगी। क्योंकि जो चीज़ आई नहीं जायेगी कैसे ? इसके छोटे-छोटे हिस्से तो सत, रज, तम गुणों के कारण और हमारे अहं के कारण प्रतीत हो रहे हैं। लेकिन जो ज्ञानी है साधक है वह जानता है कि इन सब के भीतर और बाहर एक जैसा ही खाली स्थान है जिसे आकाश कहते हैं।

नोट:-शास्त्रों में इस खालीपन को (Space) खालीपन कभी नहीं कहा बल्कि इसे खोखलापन कहा है। खालीपन और खोखलेपन में बहुत अन्तर है। जैसे हमारे कहने के मुताबिक एक घड़ा भीतर से खाली नज़र आता है, लेकिन साधक कभी इसे खाली नहीं बल्कि भीतर से खोखला कहेगा क्योंकि यह बात पूर्णतय: वैज्ञानिक तौर पर भी सिद्ध है कि दुनिया में कहीं भी खालीपन नहीं (There is nothing like vaccume) ये जो आकाश भी खाली खाली नज़र आ रहा है दरअसर भरा पड़ा है वायु से, छोटे-छोटे धूल कणों से, वाष्प कणों से और कीटाणुओं से, अणुओं से। क्योंकि यह भरा होने के बावजूद खोखला है तो इसमें गुजाइंश रहती है और भी कुछ समा (ग्रहण) लेने की जैसे एक बाल्टी में हम पानी डाल लें भरी हुई होने के बावजूद भी हम उसमे अपना हाथ या कोई छोटी छड़ी जैसी वस्तु डाल लेते हैं क्योंकि बाल्टी भरने के बाद

भी खोखली है।

सभी प्राणियों में एक ही शक्ति का संचार है। हमारे घरों में एक फ्रिज़ है, कूलर है, पंखें हैं, बल्ब हैं और दूसरी कई तरह की ऐसी चीज़ें हैं जो बिजली से चलती हैं। यद्यपि ये सब चीज़ें अलग अलग दिखाई देती हैं और अलग अलग कार्य करती हैं लेकिन इन सब में प्रवाहित होने वाली शक्ति (Power) (Current) (Electricity) एक ही है। उसमें तिल मात्र भी भेद नहीं है। और उस सारी शक्ति का सदैव से एक ही स्रोत रहा है। उसी तरह इस सृष्टि में अलग अलग दिखाई देने वाले जीव, जन्तु, मनुष्य आदि सबमें एक ही प्रकार की चेतनता है जिसे हम ईश्वर कहते हैं। जैसे बिजली न होने पर फ्रिज, फ्रिज की तरह काम नहीं करते, बल्ब रोशनी नहीं देते पंखे हवा नहीं देते उसी तरह ये ईश्वरीय शक्ति न होने पर मानव मानव नहीं रहता और सृष्टि में भी कोई चेतनता नहीं रहती।

इसी सम्बन्ध में जो और एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण मिलती है वह इस प्रकार है। कोई भी व्यक्ति जब समुद्र के किनारे जाता है वह किनारे पर लहरों को आते व लौटते हुये देखता है। जब उस से कोई दूसरा व्यक्ति पूछता कि तुम क्या देख रहे हो तो वह झट से जवाब देता है कि मैं लहरों को देख रहा हूँ। वह कभी नहीं कहता कि मैं सागर को देख रहा हूँ। लहरों में भी भिन्नता देख रहा है, कोई छोटी है बड़ी है, कोई शान्त सी है तो कोई भयभीत करने वाली है। लेकिन जो ज्ञानी पुरुष है जो साधक है वो लहरों को नहीं देखता, वह लहरों को देख कर भी नहीं देखता उसे तो बस सागर ही दिखाई पड़ता है उसके लिये तो हर लहर में सागर है और तो और हर लहर में पूर्ण सागर है। वास्तव में देखा जाये तो लहर तो तब ही बनी जब सागर है अगर सागर नहीं है, तो लहर कैसे होगी। लहर को लहर बने रहने के लिये सागर से जुड़े रहना है सागर से अलग हो कर तो लहर का वजूद ही न रह पायेगा। लहर चाहे छोटी है चाहे बड़ी, हर लहर सागर के कारण है, सागर के ऊपर है, सागर के भीतर है। इन सब से ऊपर हर लहर सागर ही है परिस्थितियों के कारण आज के वैज्ञानिक युग में कदाचित यह संभव हो जाये कि लहर के ऊपर कोई बोलने वाला यन्त्र लगा दिया जाये तो हर लहर बोलने लगे कि मैं तो एक लहर हूँ, मैं सागर नहीं हो सकती कहां सागर इतना शक्तिशाली, विशाल और कहां मैं तुच्छ छोटी सी लहर। इसी तरह यह सृष्टि भी ईश्वर के कारण है ईश्वर के भीतर है बल्कि ये सारी की सारी ईश्वर ही है। अज्ञानता वश प्राणी खुद को उस ईश्वर

से अलग समझ कर खुद को तुच्छ सा महसूस करता है। सागर के ऊपर लहरों के अतिरिक्त झाग भी होती है और बुलबुले (Bubbles) भी। चाहे लहर है चाहे झाग अथवा बुलबुले सबमें पानी है क्योंकि, सागर खुद एक पानी है। पानी के बगैर किसी का कोई अस्तित्व नहीं। सब पानी ही पानी है। इस तरह जीव जन्तु पशु मानव सब ईश्वर ही हैं। ईश्वर के अतिरिक्त कुछ भी नहीं। अब कैसे यकीं आये कि हम सभी वो परम तत्व ईश्वर ही हैं ?

एक बार एक आश्रम में एक जिज्ञासु आया। आश्रम आचार्य के पास जा कर उसने अपनी इच्छा जाहिर की। उसने कहा, मैं परमात्मा के बारे सब कुछ जानना चाहता हूं। उसकी सृष्टि के बारे में भी जानना चाहता हूँ। ऐसा कहा जाता है कि ईश्वर हर प्राणी के भीतर निवास करता है, ये कैसे सम्भव है मैं जानना चाहता हूँ मैं उस परम पिता परमात्मा का दर्शन करना चाहता हूँ।

आश्रम आचार्य ने उसकी बात ध्यान से सुनी और उसकी तीव्र जिज्ञासा को भी भांप लिया। वे उस जिज्ञासु को समझा कर कहने लगे कि यह सब कुछ संभव है लेकिन, इसके लिये तुम्हें कुछ समय तक यहां मेरे साथ आश्रम में ही रहना होगा और जैसा मैं चाहूँ आचरण करना होगा। जिज्ञासु तुरन्त मान गया। आचार्य ने उसे अपना शिष्य बना लिया। उन्होंने शिष्य को एक आम की गुठली दी और कहा कि इसे ज़मीन में दबा कर इसकी देख भाल करें। रोज़ाना इसे पानी दें। यह शिष्य रोज़ाना अपने गुरुदेव आचार्य से भगवन नाम सुनता सतसंग करता। धीरे धीरे वह आश्रम के सभी कार्यक्रमों में भाग भी लेने लग गया। अब उसका जीवन अनुशासित और नियमबद्ध होने लगा। इस दौरान वह गुठली जो अब पेड़ बन चुकी थी उसकी भी देख भाल करता रहा। धीरे धीरे उसे वहां चार वर्ष रहते हुये बीत गये। लेकिन उसकी जिज्ञासा अब भी शान्त नहीं हुई थी उसके सभी सवाल ज्यों के त्यों बने हुये थे। इतने समय में गुरुदेव ने भी कभी जानबूझ कर इन सवालों पर ध्यान नहीं दिया। चार वर्ष बाद शिष्य ने फिर हौंसला किया। अपने सारे सवाल गुरुदेव को फिर से कहे। गुरूदेव ने जवाब दिया–हां अब तुम्हारे सवालों का जवाब मेरे पास है अब तुम भी इस काबिल हो चुके हो कि तुम्हें इन सवालों का जवाब दिया जा सके। लेकिन अभी तुमने मेरा एक काम करना है, बस एक अन्तिम काम उसके बाद तुम्हारे सवालों के जवाब उसी क्षण तुम्हें मिल जायेंगे। गुरुदेव ने कहा कि मैंने तुम्हें एक बार एक आम की गुठली दी थी। मुझे मेरी वही गुठली वापिस दे दो। शिष्य ने गुरू आज्ञा मानते हुये उस गुठली की खोज शुरू कर दी। और ठीक

उसी स्थान पर (जहां उसने गुठली धरती में दबाई थी) खोदना शुरू कर दिया। उसने सोचा, भले ही यहां पर पेड़ लग चुका है लेकिन वह गुठली ज़रूर नीचे होगी। वह काफी देर तक खुदाई करता रहा, लेकिन गुठली हाथ न लगी। अन्ततः थक हार कर गुरू जी के पास आ कर कहने लगा कि मैं उस गुठली को ढूंढने में असफल हो गया। गुरू जी ने शिष्य की निराशा को भांप लिया। वास्तव में वे तो उसकी बुद्धि की परीक्षा ले रहे थे। वे मुस्कराते हुये शिष्य से कहने लगे, वत्स इस में कोई सन्देह नहीं कि तुमने मेरा कहना मानते हुये गुठली को ढूँढने का प्रयास किया, लेकिन तुम्हारी खोज गलत जगह पर थी इसलिये तुम सफल न हो सकें। यह ठीक है गुठली तुमने यहीं पर दबाई थी, लेकिन अब यह यहां पर नहीं मिलेगी इसके लिये तुम्हें अपनी खोज का स्थान बदलना होगा। जो गुठली तुमने दबाई थी वह अब एक विशाल पेड़ में तबदील हो चुकी है। अब तो उस पेड़ पर आम रुपी मीठे फल भी लग चुके हैं। अब अगर तुम्हें गुठली को प्राप्त करना है तो तुम्हें पेड़ के ऊपर जाना होगा। वहां से कोई भी आम ले कर उसे खोल कर देखो बिल्कुल वही की वही गुठली आम के भीतर मिल जायेगी। जो गुठली तुमने दबाई थी एक नहीं रह गई बल्कि अनेक हो चुकी हैं और एक एक आम के भीतर वास कर रही है। हर गुठली में उतने ही गुण हैं जितने पहली में थे। हर गुठली फिर एक नया पेड़ बन सकती है। अब तो तुम जो भी आम उठायो अपनी बुद्धि और दिव्य दृष्टि का उपयोग करते हुये गुठली को उसके भीतर देखो। अगर तुम ऐसा कर पाओ, अगर तुम आम के भीतर गुठली देख पाओ तो समझ लो तुम्हारी साधना पूर्ण हुई तुम्हारी खोज सही दिशा में चल पड़ी क्योंकि अब तुम्हारे हाथ में आम और उसकी मिठास ही नहीं बल्कि आम और उसकी मिठास का कारण गुठली भी है। इसी तरह वो ईश्वर जो बीज रूप (निराकार रूप से) बदल कर संसार रूप (साकार रूप) ले चुका है और संसार रूपी विशाल वृक्ष पर पशुपक्षी जीव जन्तु और मानव की शक्ल में फल बन कर लगा हुआ है, हरेक के भीतर वास कर रहा है, वह एक से अनेक हो चुका है। अब उसकी खोज कहीं और नहीं हो सकती अब तो इस संसार रूपी वृक्ष के ऊपर लगे हुये फल रूपी पशु पक्षी जन्तु व मानव के भीतर ही करनी होगी। बुद्धि और दिव्य दृष्टि को प्राप्त करके हर प्राणी के भीतर कारण रूप परमात्मा को देखना होगा या दर्शन करना होगा।

और ऐसा करने के लिये अर्थात ईश्वर दर्शन के लिये हम किसी भी प्राणी

अथवा जीव का चयन कर सकते हैं क्योंकि वह हरेक के भीतर है और उतना ही है जितना वह पहले था। जैसा कि हम पहले से ही जानते हैं कि उसकी ऐसी इच्छा हुई कि मैं एक से अनेक हो जाऊं और वह हो गया लेकिन अनेक हो कर भी एक रहा क्योंकि जैसे हर आम के भीतर एक जैसी गुठली है उसी तरह हर प्राणी के भीतर एक जैसा ही आत्मा रूपी परमात्मा है जैसे सागर पर लहरें अनेक हैं फिर भी सागर एक है जैसे पेड़ पर न जाने क्या कुछ है, तना है पत्ते हैं, फूल है कांटे हैं, फल हैं फिर भी पेड़ एक है। इसी तरह इस सृष्टि में सूर्य है चान्द है, सितारे हैं, धरती है, मानव है, पशु है, पक्षी है, मानव है फिर भी सृष्टि एक है और यह सारी की सारी सृष्टि एक ही बीज, एक ही ईश्वर, एक ही परमात्मा, एक ही भगवान, एक ही शक्ति से पैदा हुई है । इस अनेकता में उस एक को देख लेना ही, अनुभव कर लेना ही उसका दर्शन है और प्राप्ति है। बीज के अन्दर पेड़ और पेड़ के अन्दर बीज अर्थात जीव के अन्दर ब्रह्म (ईश्वर) और ब्रह्म के अन्दर जीव को देखने की कला को ही दिव्य दृष्टि का प्राप्त हो जाना कहते हैं। एक बार ऐसी दिव्य दृष्टि पा जाने पर मतलब परमात्मा के दर्शन हो जाने उपरान्त, दर्शन करने वाला जीव भी ब्रह्म अर्थात् परमात्मा ही बन जाता है जैसे नदी सागर में मिल जाने के उपरान्त सागर ही बन जाती है। नदी की सागर में मिल जाने की चेष्टा तब तक ही रहती है जब तक सागर में मिल नहीं जाती। एक बार सागर में मिल जाने के बाद उसकी सारी कोशिश सारी जिज्ञासा समाप्त हो जाती है। साधक की भी यही हालत होती है। एक बार ईश्वर दर्शन (जिसे ईश्वर प्राप्ति भी कहते हैं) हो जाने पर सारी साधना सारी जिज्ञासा शान्त हो जाती है।

निष्कर्ष

पीछे किये गये अध्ययन में हमें जो जानकारी मिली वह इस प्रकार है :-

1. हर मानव सुख की खोज में है लेकिन वास्तिवक सुख की पहचान न होने के कारण मानव जीवन भर भटकता रहता है।
2. परमात्मा की प्राप्ति ही सिर्फ सुखकर है।
3. परमात्मा का ज्ञान ही परमात्मा की प्राप्ति है।
4. आत्म ज्ञान के बिना परमात्मा का ज्ञान हो ही नहीं सकता।
5. इस विश्व को परमात्मा ने बनाया नहीं बल्कि वह खुद ही यह विश्व बना हुआ है।
6. विश्व विष्णु दोनों एक ही है विश्व विष्णु का ही विराट स्वरूप है।
7. परमात्मा बीज है, और यह संसार एक वृक्ष है।
8. जैसे जड़, तना, पत्ते, फल, फूल टहनियाँ इत्यादि सब मिल कर एक वृक्ष बनाते हैं या कहलाते हैं इसी तरह धरती, पानी, अग्नि, वायु आकाश सूर्य, चांद, सितारे पशु, पक्षी, मानव इत्यादि सब मिल कर यह संसार बनाते हैं या कहलाते हैं।
9. जैसे बीज के भीतर वृक्ष होता है, सागर के ऊपर लहरें होती हैं इसी तरह ईश्वर के भीतर यह संसार अथवा यह मानव होता है।
10. धरती, पानी, अग्नि, वायु व आकाश ये पांचों तत्व ईश्वर ही से निकले और फिर ईश्वर ही खुद छठा तत्व (शक्ति) (प्रेम) रूप हो कर इनका नियन्त्रण भी करता है।
11. इसी तरह इस मानवीय शरीर में भी इन पांचों तत्वों का मिश्रण ही है और इन को बान्धने वाला भी छठा ईश्वरीय तत्व प्रेम है जिसे आत्मा कहते है।
12. आत्मा और परमात्मा दो नहीं एक ही है। एक अंश है दूसरा अंशी है।
13. इन्हें दो समझना सबसे बड़ी भूल है और दु:ख का कारण है।

भाग - 2

योग क्या है ?

एक का दूसरे के साथ मिल जाना योग कहलाता है।

योग के सम्बन्ध में शास्त्रों में बहुत ही गहन विचार दिये हुये हैं। लेकिन सभी शास्त्र, सभी ऋषिगण, सभी मत अन्त में इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं।

एक का दूसरे के साथ जुड़ जाना– दो का वजूद खत्म् करके एक हो जाना ही योग कहलाता है।

एक (अंश) दूसरा (अंशी)– एक (आत्मा) दूसरा परमात्मा एक छोटा (बूंद या नदी़या) दूसरा बड़ा (सागर) के साथ मिल जाना ही योग कहलाता है! और इस मिलन सम्बन्धी किये गये तमाम उपाय (साधन) योग साधना कहलाते हैं। और योग साधना करने वाला (ऐसी ही योग साधना करने वाला) योगी कहलाता है।

योगी बनने के लिए अथवा योग करने के लिये ध्यान करना पड़ता है या ध्यान का मार्ग अपनाना पड़ता है। यहां एक बात स्पष्ट रहनी चाहिये कि योग, ध्यान नहीं है और न ही ध्यान योग है । बहुत से लोगों को यह भ्रान्ति रहती है कि ध्यान ही योग है, नहीं ऐसा नहीं है। लेकिन ऐसा जरूर है कि ध्यान करते करते योग की प्राप्ति अवश्य हो जाती है। योग ध्यान की मंजिल है। यह बिल्कुल ऐसे ही जैसे मक्खन की प्राप्ति दूध से होती है लेकिन दूध मक्खन नहीं है, दूध से मक्खन की प्राप्ति के लिए बहुत प्रकार की प्रक्रिया (साधना) अपनानी पड़ती है। इसी तरह ध्यान भी योग नहीं है। हां ध्यान के मार्ग पर चलने वाला योग की प्राप्ति अवश्य कर लेता है। लेकिन जिज्ञासु अथवा साधक को यह जानना परम आवश्यक है कि ध्यान कब और कैसे किया जाये और कितना किया जाये ? लेकिन इससे पहले हमें रोज़ के जीवन में हमारी अलग-अलग अवस्था की जानकारी होना भी आवश्यक है। रोज़ मरहा के जीवन में मानव की चार अवस्थायें होती हैं।

1. जागृत 2. निद्रा अवस्था 3. सुषुप्ति अवस्था 4) तुरीया अवस्था

जागृत अवस्था – समस्त इन्द्रियां, शरीर, मन, बुद्धि व अहं सक्रिय (क्रियाशील) हैं।

2. निद्रा अवस्था– इसे स्वप्नावस्था भी कहते हैं। इसमें शरीर व इन्द्रियाँ

शान्त हैं। मन, बुद्धि व अंह सक्रिय है।

3. सुषुप्ति अवस्था– मन व बुद्धि भी शान्त है। केवल अहं सक्रिय है।

4. तुरीया अवस्था– अहं भी शान्त है। इस अवस्था में जीव आत्मा का सम्पर्क परमात्मा से होने का मार्ग क्रमशः सरल होने लगता है।

यहां आगे बढ़ने से पहले आइये थोड़ा अहं को समझ लें। मानव शरीर में कर्म इन्द्रियां और ज्ञान इन्द्रियों के अतिरिक्त चित्त, मन, बुद्धि भी अदृश्य रूप में कार्यरत रहते हैं और इन सबके अतिरिक्त एक अहं भी होता है। अपने और पराये की पहचान, तेरा और मेरा कहना, ममत्व और अपनत्व की पहचान इसी अहं के कारण होती है। इसकी जब अति लघु अवस्था होती है तो यही अहंकार कहलाता है। ये नवजात शिशु में, जवानी में अथवा बुढ़ापे में हर समय बराबर क्रियाशील रहता है। इसी के कारण एक छोटा बच्चा जिसे कुछ भी पता नहीं अपनी मां की और दूसरे भाई बन्धुओं की पहचान बना लेता है। रूपये-पैसे देने पर पकड़ लेता है, और बेकार के कागज़ बगैरह को छोड़ देता है। क्लास में सभी बच्चों के पास एक ही तरह के कलम (Pen) होती है लेकिन (Mix) मिला देने पर हर बच्चा अपने अपने pen की बखूबी पहचान इसी अंह के बल पर कर लेता है। निम्न अवस्था में यह अगर अहंकार है तो परम अवस्था में यही आत्मा बन कर परमात्मा का स्वरूप बन जाता है। जैसे निम्न अवस्था में एक लहर अपने आपको तुच्छ , व अर्थ हीन मान लेती है लेकिन उच्च व परम अवस्था में वही लहर अपने आप को सागर से जुड़ा हुआ पाती है और सागर ही कहलाती है।

1. जागृत अवस्था– यह हमारे शरीर की वो अवस्था है जिसमें हमारा शरीर, इन्द्रियां, मन, बुद्धि, और अहम् सभी क्रियाशील होते हैं। इस अवस्था में हर व्यक्ति को अपनी सम्पूर्ण जानकारी रहती है।

2. निद्रा अवस्था– यह हमारे शरीर की वो अवस्था है जिसमें हमारा शरीर और इन्द्रियां शान्त हो जाती हैं। प्रायः आराम करने के वक्त ऐसा होता है। इसे स्वप्न अवस्था इस लिये कहते हैं क्योंकि इस में मानव का मन और बुद्धि व अहं सभी अपना अपना कार्य करते रहते हैं। बुद्धि में जो विचार पहले ही दबे होते हैं। (चाहे वर्षों पुराने) मन उन सब को एक दुनिया में तबदील कर देता है। जिसे हम स्वप्न कहते हैं। और अहं इस स्वप्न का साक्षी बना रहता है। जाग

जाने पर यही अहं (Explanation) व्यौरा देता है कि अमुक व्यक्ति ने निद्रा के दौरान ऐसा ऐसा स्वप्न देखा।

3. सुषुप्ति अवस्था – यह भी निद्रा की अवस्था है लेकिन गहरी निद्रा की। इसमें व्यक्ति का शरीर, इन्द्रियों के साथ मन और बुद्धि भी शान्त हो जाते हैं। यह स्वप्न अवस्था के बाद की अवस्था है। लेकिन अहं, यहां भी अपना काम करता रहता है। यह शरीर, इन्द्रियां, मन और बुद्धि पर नजर रखता है। इस अवस्था में व्यक्ति विशेष आराम महसूस करताहै। और इसी साक्षी अंह के कारण व्यक्ति कहता है कि आज मुझे बहुत अच्छी नींद आई।

4. तुरीया अवस्था :- यहां अहं भी शान्त है इस अवस्था में अपने आप को परम आनन्दमयी मानकर अपना सम्पर्क परमात्मा से कर लेता है और परम सत्ता का अधिकारी बन जाता है।

इस रोज की जिन्दगी में (Routine Life) शरीर की जिन 4 अवस्थायों की चर्चा हमनें की ये हर एक मनुष्य पर लागू होती हैं। लेकिन जो व्यक्ति विशेष अध्यात्म के रास्ते पर चल पड़ा हो या चलने की कोशिश कर रहा हो उस को यही चारों अवस्थायें किसी दूसरे ढंग से प्रभावित करती हैं। आध्यात्मिक मनुष्य मानता है कि जागृत की वजाय निद्रा अवस्था पहले होती है। दूसरी दो का क्रम तो बिल्कुल वही रहता है लेकिन जीवन को प्रभावित करने का ढंग बदल जाता है।

हमने बहुत सारे सन्तों से सुना है, हमने बहुत सारे गीत सुने हैं हमने बहुत सारी किताबें पढ़ी है कि हे मानव तू जाग– कभी इसका अभिप्राय: सोचा– हे मानव तू जाग अरे मानव तो रोज सोता है फिर सुबह होते ही जाग जाता है फिर यह कथन बार–बार क्यों सुनने को मिल रहा है कि हे मानव तू जाग।

सही तो है। दरअसल हर मानव या बहुत से मानव सोये रहते है, जीवन भर सोये रहते हैं। नींद में ही सारा जीवन गुजार देते है। ये सोना चारपाई पर सोने जैसा नहीं है ये नींद वैसी नींद नहीं है। जिसमें हमारा शरीर लेट जाता है। ये नींद है बेखबरी की नींद। देखने को तो हम जाग रहे होते है क्योंकि हमारी आँखें खुली रहतीहै शरीर व इन्द्रियां कार्यरत रहते हैं लेकिन मानसिक तौर पर बे खबर रहते हैं। मैं छोटे–छोटे फर्जों की बात नहीं कर रहा हूँ। हां उसकी उदाहरण जरूर लेता हूँ, जैसे कोई बच्चा क्लास में बैठा है, Teacher पढ़ाने के

बाद उसे कुछ पूछता है, तो बच्चा जवाब में कहता है कि उसे कुछ पता नहीं चला क्योंकि वह क्लास में बैठा होने के बावजूद क्लास में नहीं था, उसका मन, दिमाग, कहीं और था उसका तो सिर्फ क्लास में शरीर था और शरीर ने बिल्कुल वैसा ही व्यवहार किया जैसे कि आम आदमी का शरीर सो जाने के उपरान्त करता है, जैसे जब एक आदमी सो जाये फिर उसके पास बैठ कर कुछ भी बोलो या करो उसे कुछ पता नहीं चलता उसकी इसी अवस्था को निद्रा की अवस्था कहते हैं तो क्यों न उसे बच्चे को भी निद्रा अवस्था में कहें जिसे क्लास में बैठे होने के बावजूद भी कुछ पता नहीं चलता।

इसी तरह मानव भी अपने गुरुओं, ऋषियों, पुस्तकों तथा ग्रन्थों की पुकार और गुहार को न सुन कर अपनी तुच्छ कामनाओं, वासनाओं को पूरा करने में लगा रहता है और जीवन गुज़ार देता हैं। वह अपना पूरे का पूरा जीवन सिर्फ इच्छाओं की पूर्ति में लगा देता हैं, कभी भी इस ओर ध्यान नहीं देता कि ये हमें जागने के लिये क्यों कहा जा रहा है ? क्या हम जो कर रहे है सही है! क्या जो कर रहे हैं इतना ही काफी है या इसके अतिरिक्त कुछ और भी करने लायक हैं। क्या जो जीवन हम गुजार रहे हैं इसी तरह गुजारा जाता है या कोई और भी ढंग है। जो मनुष्य इन बातों पर ध्यान देता है और पूछ बैठता है बताइये मुझे क्या करना है वही जागा हुआ है। सोने वाला कुछ नहीं बोलेगा। वह तो मस्त है नींद में सपनों में केवल जागता हुआ मनुष्य ही बोलेगा। एक बात और – जो मनुष्य एक लम्बीं नींद से जागता है और अपने आपको कहीं दूसरी जगह पाता है। (यहां सो गया था वहां नहीं) वह यह भी पूछता है मैं कहां आ गया हूँ ? हड़बड़ी में अक्सर यह भी भूल जाता है कि मैं कौन हूँ ? जो जाग जाता है वह पूछता है कि मैं कौन हूँ ? लम्बी नींद से जागने वाले के यह दो प्रथम सवाल होते हैं कि मैं कौन हूँ और कहाँ हूँ ?

जो मनुष्य इन सवालों को करता है वही निद्रा अवस्था से जागृत अवस्था में आता है। और जो जागृत हो जाता है उसी के लिये आगे का मार्ग यानि सुषुप्ति अवस्था का मार्ग प्रशस्त होता है। दूसरे के लिये नहीं। अब इस क्रम में एक अन्तर और है। निद्रा में सुषुप्ति की अवस्था गहरी निद्रा से प्राप्त होती है लेकिन जागने के बाद अथवा निद्रा से जागृत अवस्था में आने के बाद सुषुप्ति की अवस्था अत्यन्त चेतनता में प्राप्त होती है और इसके लिये ध्यान की

आवश्यकता होती है । ध्यान से ही मानव जागृत से सुषुप्ति और सुषुप्ति से तुरीया अवस्था को प्राप्त करता है। और तुरीया अवस्था को प्राप्त हुआ मानव ही आत्मा और आत्मा के प्रकाश को जान पाता है। जैसे हमने अभी विचार किया कि जागता हुआ मनुष्य ध्यान द्वारा सुषुप्ति अवस्था के लिये अपना मार्ग प्रशस्त कर लेता है इसको अगर यूँ भी कहें कि जागृत हुआ मनुष्य ज्ञान प्राप्ति की चरम सीमा जिसे तुरीया अवस्था कहते है उसे ध्यान द्वारा प्राप्त होता है। क्योंकि निद्रा के दौरान जो सुषुप्ति अवस्था की प्राप्ति है, जागृत मनुष्य वही अवस्था ध्यान से प्राप्त कर लेता है अब अगर यह कहें कि ध्यान ही सुषुप्ति है तो गलत नहीं होगा। बल्कि थोड़ा सा और विचार करने पर हमें यह भी पता चलता है ध्यान अवस्था सुषप्ति से कहीं बेहतर है। क्योंकि सुषप्ति में शरीर, इन्द्रियां तो शान्त रहती हैं लेकिन मन और बुद्धि कार्यशील रहते हैं और अहं उनका साक्षी बन जाता है। और ध्यान करने पर शरीर, इन्द्रियां तो क्या कोशिश करने पर मन और बुद्धि पर भी नियन्त्रण हो जाने पर अहं भी विलीन हो जाताहै। सुषुप्ति से मानव जब जागता है या उठता है वह शरीर और इन्द्रियों में सफूर्ति और मन व बुद्धि में आनन्द महसूस करता है लेकिन वह इन सभी के स्रोत के बारे अनभिज्ञ रहता है लेकिन ध्यान के पश्चात यहां मनुष्य सफूर्ति व आनन्द महसूस करता है वह इन सब के स्रोत की जानकारी भी प्राप्त करता है। बल्कि अगर यह कहें कि वह स्रोत अर्थात् ईश्वर से सम्पर्क कायम करता है।

सुषुप्ति अवस्था से जागने पर, सफूर्ति व आनन्द प्रदान कराने वाले केन्द्र के अज्ञान के कारण व्यक्ति क्रमशः शक्रि ज्ञान व आनन्द (सुख) की प्राप्ति के लिये भोजन, अध्ययन और धन संग्रह की ओर ही प्रवृत होता है, दुख निवृति के साधनों की ओर बढ़ नहीं पाता। ध्यानावस्था में साधक के इस अज्ञान के हट जाने से यह इस की प्राप्ति के लिये क्रमशः उपवास, सुमिरन, सेवा के मार्ग को अपनाता है। जिससे अखण्ड शक्ति, अखण्ड ज्ञान, अखण्ड आनन्द की ओर बढ़ता है। उक्त विवेचन उपरान्त ध्यान में प्रवेश के सम्बन्ध में निम्नलिखत मुख्य बाते हैं ।

1. ध्यान कब करें 2. ध्यान कहां करें 3. ध्यान कैसेकरें 4. ध्यान कितना और 5. ध्यान किसका करें।

उपरोक्त बातों पर ध्यान देने से पहले एक बार इस बात को जान लें कि

ध्यान क्या है ?

ध्यान मन चित्त और बुद्धि में उठने वाले विचारों को नियन्त्रण (काबू) करने का तरीका है। ध्यान चित्त में उठने वाले विचारों को गलत दिशा से हटा कर एक ही सही दिशा में लगाये रखने का एक यत्न है। It is just concentration of mind.

मानव रूपी रथ को एक घोड़ा खींचता है जिसे मन कहते हैं अगर यह घोड़ा सारथी के काबू में है तो रथ को सही दिशा में ले जायेगा, अगर बेकाबू है तो खुद तो भटकेगा ही साथ ही साथ रथ और सारथी दोनों को ही दिशाहीन भी करेगा और दुख और निराशा के घेरे में भी डाल देगा। आज के युग में किकेट का खेल इस सम्बन्ध में बहुत ही उपयोगी उदाहरण प्रस्तुत करता है। गेंद मन के समान है जैसे बल्ले से खेलने वाला खिलाड़ी तेज आती हुई गेंद को अपनी कुशलता से नयी दिशा देकर न सिर्फ खेल में जीत हासिल करता है बल्कि खेल का आनन्द भी उठाता है और अगर खेलने वाला खिलाड़ी गेंद का सामना ठीक ढंग से नहीं करता तो उसके साथ कुछ भी हो सकता है, वह चोट भी खा सकता है और खेल में हार भी सकता है। जिस तरह सारथी घोड़ों को काबू रखना सीख लेता है खिलाड़ी गेंद का सामना करना सीख लेता है उसी तरह मनुष्य ध्यान द्वारा अपने मन पर काबू पाना भी सीख लेता है। ऐसी दक्षता हासिल करने पर वह अपने मन को जहां चाहे लगा सकता है और जीवन का सुख (सत्य) हासिल कर सकता है। लेकिन इस के लिये मनुष्य को इस की उपयोगिता को समझ कर दृढ़ निश्चयी बनना पड़ता है। जीवन का जो परम सुख है, स्थाई सुख है इसके बिना प्राप्त नहीं हो सकता और साधक को इस बात में कतई आशंकित नहीं होना चाहिये।

ध्यान कब करें :- ध्यान के लिये न तो कोई उम्र (आयु) विशेष तौर पर निश्चित है और न ही समय। ध्यान किसी भी उम्र में किया जा सकता है और किसी भी समय में किया जा सकता है। कई लोग कहते हैं कि ध्यान की बचपन और जवानी में कतई आवश्यकता नहीं थे तो बूढ़े लोगों का काम है। ऐसा बिल्कुल नहीं । वास्तव में बुढ़ापे में जैसे आदमी दूसरे सभी कार्यों को करने की क्षमता खो देता है उसी प्रकार बुढ़ापे में ध्यान करना भी (शुरु करना या सीखना), बस में नहीं रहता। ध्यान शुरु करना या सीखने की सही मायनों में

बचपन की अवस्था सबसे उपयुक्त है। अगर किन्हीं कारणों वश बचपन में ऐसा मौका नहीं मिला तो यौवन की अवस्था भी कम उपयुक्त नहीं और अगर यौवन अवस्था भी यूँ ही गुजर गई है तो बुढ़ापे में मौका मिला रहा है तो जरूर फायदा उठा लेना चाहिये। क्योंकि एक बात तो सर्वोपरि है कि जब जागो, तभी सवेरा।

अब दूसरी बात दिन के किस पहर में ध्यान करना चाहिये ? यूँ तो ध्यान चौबीसो घण्टे ही करना चाहिये जैसे एक कहावत है हाथ में काम, मुँह में राम! ध्यान तो हर समय ही करना श्रेष्ठ है। लेकिन आम तौर पर यह संभव नहीं है। इसीलिए हमारे ऋषि मुनियों ने ध्यान व पूजा पाठ के लिए समय निर्धारित किये। ध्यान के लिये सबसे उत्तम समय सुबह का सूर्य निकलने से पहले और उसमें भी जो सबसे लाभप्रद समय है तड़के 4 बजे से लेकर 6 बजे तक का। इसके भीतर अगर ध्यान किया जाये तो ध्यानी (साधक) असीम फायदा उठा सकता है। यह समय चौबीसों घण्टों में से सबसे पावन समय होता है। इस समय में मन की चंचलता सबसे कम होती है। वायु, प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण भी इस समय सबसे न्यून होता है। इस समय में आकाशीय पावनतम वायु धरती पर असर कर रही होती है। (OZO NE–O^3 मनुष्य को स्वास्थ्य की दृष्टि से भी यह वायु बहुत लाभकारी है। अगर ध्यान नहीं भी करना तो भी इस समय उठने वाला मनुष्य दीर्घ आयु वाला होता है।

ध्यान कहां करें :- वैसे तो ध्यान कहीं भी किया जा सकता है लेकिन प्रारम्भ में ध्यान के लिये एकान्त होना आवश्यक है। क्योंकि भीड़-भाड़ वाले स्थान में बाधा उत्पन्न होने के आसार बने रहते हैं। घर के अन्दर किसी अलग कमरे में या पूजा घर ध्यान का स्थान उत्तम माना जाता है। पूजा घर में अपने इष्ट देव के चित्र लगा कर, ज्योति और धूप जला कर और मधुर आवाज में भजन अथवा संगीत लगा कर ध्यान करना उपयोगी रहता है। शोर शराबा, धुआं और उत्तेजना प्रदान करने वाला संगीत ध्यान में हानिकारक होता है।

ध्यान कैसे करें :-

सबसे पहले हमको बैठने के लिये उपयुक्त आसन का चुनाव करना चाहिए। यदि सम्भव हो तो ज़मीन से थोड़ी ऊंची चौकी या पट्टा लेकर उस पर सूती, ऊनी या रेशमी वस्त्र विछा लेना चाहिए। इसे किसी दूसरे कार्य में नहीं

लगाना चाहिए। ध्यान के समय अपने सामने अपने इष्ट देव का चित्र लगा उसकी ओर मुख करके बैठना चाहिए। ध्यान के समय जिस आसन में हम सरलता से बैठ सकें बैठना चाहिए। ध्यान के समय हमारी रीढ़ की हड्डी सीधी रहनी चाहिए साथ ही साथ गर्दन व सिर सीधे व ऊपर उठे रहने चाहिए।

इसके बाद अपने इष्ट देव के नाम या रूप के सहारे मन को एक बिन्दु पर केन्द्रित करने का प्रयास करना चाहिए। शुरु शुरु में ऐसा करना सहज न होगा और हो सकता है कि नींद आने लगे जिसे लय कहते हैं। निरन्तर अभ्यास से ये विघ्न कम होते जाएंगे व वृत्ति नाम या रूप में स्थिर होने लगेगी। इसी स्थिर अवस्था को एकाग्रता कहते हैं। ध्यान की यह एक अत्यन्त उच्च अवस्था है। लेकिन इसमें ध्यानी को यह अहंकार बना रहता है कि मैं ध्यान कर रहा हूँ। लेकिन अभ्यास के बढ़ने के साथ-साथ जैसे जैसे लय और विक्षेप भी मिटने लग जाते है, वह बिन्दु भी समाप्त होने लगता है जिस पर वृत्तियाँ एकाग्र होने लगी थीं व जीवात्मा परमात्मा (स्रोत) की ओर सन्मुख होने लगती है। इस अवस्था को प्राप्त करके बुद्धि के ऊपर जो अंहकार और कुसंस्कारों का जो आवरण एकत्र हुआ था क्रमशः क्षीण होने लगता है और जिस जिस अनुपात में यह क्षीण होता जाता है उतने ही अनुपात में परमात्मा, सच्चिदानन्द शक्रियों का जीव अथवा जीवात्मा में संचार होने लगता है। फिर ध्यानी को यह अहसास ही नहीं रहता कि वह ध्यान कर रहा है। वास्तव में यह वह उच्च अवस्था होती है जब साधक सारा समय ही ध्यान कर रहा होताहै।

अगर ऐसा नहीं हो पाता तो साधक को समझ लेना चाहिए कि उसके ध्यान करने में, मन को एकाग्र करने में अभी कमी है और उसे निरन्तर अभ्यास में लगा रहना चाहिये। जैसे आग के पास बैठने से गर्मी और बर्फ के पास बैठने से सर्दी का एहसास होना स्वाभाविक ही है अगर किसी के साथ ऐसा नहीं होता पाता है तो बैठने वाले के बीच व आग या बर्फ के बीच कोई न कोई आवरण अवश्य है और जब तक यह आवरण नहीं हटता उस पर गर्मी व ठण्ड का प्रभाव व उनका प्राकट्य जीवात्मा में नहीं हो पाता।

इस अहंकार के विलय की अवस्था प्रेम के अतिरेक में भी प्राप्त हो जाती है, जिस से बुद्धि में अपूर्व प्रकाश का अनुभव हो कर सहज ही द्वैत भावना मिट जाती है. व सर्वत्र एक ही सत्ता व सब में अपने प्रभु के दर्शन

होने लगते है। साथ ही साथ साधक को अपने अविनाशी आत्म-स्वरूप का बोध हो जाता है और अपनी देह सम्बन्धी भ्रान्ति मिट जाती है तथा सर्वत्र उस प्रभु की लीला के दर्शन होने लगते हैं। और समस्त जीवों की क्रियाओं में उस परमात्मा के प्रेरक रूप से दर्शन होने लगते हैं। साधना के क्षेत्र में यही उच्चत्तम अवस्था है। धर्म ग्रंथों में इस सम्बन्ध में बहुत से उदाहरण मिल सकते हैं। लेकिन जो सर्वविदित है उन्ही की चर्चा मैं यहां करूंगा।

रामायण में शबरी की भूमिका इसी प्रेम के अतिरेक (चरम सीमा) को दर्शाती है जो अपने प्रिय भगवान के स्वरूप को निहारती जाती है और उन्हें भोग लगाने वाले फलों को खुद ही जूठा करती जाती है प्रेम वश वो यह भी भूल जाती है कि यह शिष्टाचार नहीं है और श्री राम भगवान भी उसके प्रेम के वश हो कर उसकी जूठन स्वीकार करते रहते हैं।

श्री मद भागवत् पुराण में वृन्दावन की गोपियों में भी प्रेम की यही चरम सीमा पायी जाती है। उन्हें तो बस हर पल हर घड़ी श्री कृष्ण ही नज़र आते हैं। उधर द्वारिका में कृष्ण के सखा उद्धव जो साधना में रत्त रहते हैं जिसे अपने ज्ञान का अहंकार होने लगता है क्योंकि वास्तव में ज्ञान प्राप्ति के बाद तो पहले से बना हुआ हर तरह का अहंकार भी नष्ट हो जाना चाहिये। लेकिन अगर इसकी बजाए ज्ञान जो प्राप्त हो रहा है उसका ही अहंकार हो जाये तो साधक की क्या स्थिति कही जा सकती है। ऐसी ही हालत थी उद्धव की। ज्ञान प्राप्ति के बाद अगर द्वैत भावना नहीं मिटती अगर प्रेम भावना नहीं उमड़ती, तो साधक की वही हालत होती है जैसे अगर किसी को बर्फ के पास बैठ कर सर्दी न लगे और आग के पास बैठ कर गर्मी न लगे। तो उद्धव में यह प्रेम की भावना जगाने के लिये कृष्ण ने उसे वृन्दावन गोपियों के पास भेजा कि जा कर वह गोपियों के समझाएं कि वे बेकार ही कृष्ण की रट लगा रही हैं इस से अच्छा तो वे ज्ञान मार्ग पर चलें और श्री कृष्ण के निराकार रूप को समझ कर अपने मनो को शान्त करें। उद्धव वृन्दावन गये लेकिन गोपियों के प्रेम के आगे उनकी एक न चली और अन्ततः खुद भी उसी प्रेम सागर में डुबकियां लगाने लगे। तब वे श्री कृष्ण के उस आनन्द मय रूप के दर्शन करने लगे जिसके वो उनके पास रहकर भी न कर सके। और इस सम्बन्ध में एक घटना की मैं

जरूर चर्चा करूँगा। महाराज अकबर एक बार जंगल में निकल गये। चलते चलते बहुत दूर चले गये। इतने में उनकी नमाज का समय हो गया। राज महल से क्योंकि बहुत दूर थे इसलिए जंगल में ही एक चादर बिछाई और नमाज अदा करने लगे। जब वो अपने ध्यान में मग्न थे तो एक औरत भागती हुई और उनकी चादर के ऊपर चढ़ गई यहां तक कि उसका एक धक्का महाराज को भी लगा। महाराज की आंख खुल गई उसका ध्यान टूट गया लेकिन वह औरत अपने रास्ते पर आगे की तरफ चलती रही। महाराज को बहुत गुस्सा आया पीछे से भाग कर उस औरत को पकड़ लिया उसे डांटना शुरू कर दिया कहने लगा, कि तुझे इतनी भी अक्ल नहीं कि जब कोई नमाज अदा कर रहा हो तो उसके आगे से नहीं निकलना चाहिये और तू तो इतनी गुस्ताख है कि चादर के ऊपर तक चढ़ आयी। फिर तूने इतनी भी परवाह नहीं की मैं महाराजा अकबर हूँ। ध्यान कर रहा हूँ नमाज कर रहा हूँ। अपने खुदा की इबादत कर रहा हूँ। लड़की पहले तो चुप रही लेकिन फिर बेबाक ही बोलने लगी कि क्षमा चाहती हूँ मुझे कतई यह पता न चला कि कोई नमाज अदा कर रहा है मुझे तो यह भी भनक न लगी कि यहां कोई बैठा भी है मैं तो जा रही थी, अपने प्रेमी की पीछे-पीछे उसके प्यार में बन्धी मेरा तो सारा ध्यान ही उस तरफ था मुझे बाकी दुनियां की खबर ही न रही लेकिन महाराज मैं तो अपने प्रेमी के प्रेम में मग्न, उसके ध्यान में खो गई तो आप इस दुनिया के मालिक, अल्ला ताला के ध्यान में रम कर इतना भी खो न सके आप तो इतना खो जाते उसके ध्यान में कि इस समय अगर आप को कोई बन्दी बना लेता आपका सर कलम कर देता तो भी आपको पता न चलता लेकिन आपका ध्यान तो इतना कच्चा कि औरत के आपके सामने से गुजर जाने तक का आपको पता चला गया। महाराज मैं यह कहने की गुस्ताखी कर रही हूँ। कि आपका ध्यान

लगा ही न था आप तो फर्जी नमाज अदा कर रहे थे। महाराज उसकी बातों से अवाक रह गये। बदले में कुछ भी न कह सके उस औरत से क्षमा याचना की ।

ध्यान कैसे करें– (कुछ और तथ्यों पर विचार)

वैदिक प्रार्थनाओं में एक प्रार्थना आती है

ओंकारम् बिन्दु संयुक्तं. नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।

कामदम् मोक्षदम् ॐकाराय नमो नमः।
जिसका अर्थ इस प्रकार किया जाता है कि बिन्दु सहित लिखा जाने वाला ॐ का ध्यान योगी जन नित्य करते हैं क्योंकि यह कामनाओं को पूरा करने वाला और मोक्ष प्रदान करने वाला है। यह अर्थ अपने आप में सम्पूर्ण है फिर भी इन अर्थों में जो गहराई है मैं उन पर चर्चा अवश्य करनी चाहूँगा।
वेद पुरुष ने स्पष्ट कहा कि बिन्दु सहित लिखा गया ओ३म (ॐ) यहां उन्होंने बिन्दु को बहुत अधिक उजागर करने की कोशिश की है, क्यों ? एक तो हमें यह समझना होगा दूसरा शब्द है योगी कि ये योगी कौन है ? आइये विचार करें :-
बिन्दु सहित लिखा हुआ ओ३म (ॐ) यहां ये छोटा सा बिन्दुँ कितना महत्त्वपूर्ण है अगर यह बिन्दु ऊपर नहीं डाला जाता तो यह अपूर्ण रहता है जैसे ३० इसमें कमी रह जाती है। इस ओ३म की यद्यपि इसके पहले कितनी भी विशालता है फिर भी इस छोटे से बिन्दु को अपने ऊपर धारण करना ही पड़ता है। इस तरह ये संसार भी उस निराकार परब्रह्म का साकार रूप है हालांकि अपने आप में सम्पूर्ण है फिर भी हमारे एक अकेले के वजूद के साथ ही परिपूर्ण है, हमारी एक अकेले की हालत बिल्कुल उस बिन्दुं जितनी ही है जो उस साकार रूप परमात्मा अर्थात् विश्व विराट को सम्पूर्ण अथवा परिपूर्ण. करती है। लेकिन जैसे अकेले बिन्दु की कोई पहचान नहीं उसका मूल्यांकन तो तभी होता है जब वह ३० के साथ जुड़ जाता है या लग जाता है और ऐसा करने के बाद वह न सिर्फ ३० को पूर्ण ॐ बनाता है बल्कि खुद भी ३० में शामिल हो कर अपनी पहचान कायम करता है और उस ३० से जुड़ कर ॐ ही बन जाता है इस तरह पूजनीय व वन्दनीय हो जाता है। इस तरह जब यह एक अकेला मानव भी इस सत्य को अपने मन में धारण करता है कि वह सृष्टि में इस विश्व विराट में यूँ ही कोई नाकारा चीज़ नहीं है, बल्कि उसका अस्तित्व तो इसी विराटता को परिपूर्ण करता है तो वह अपने आप को इस विश्व के शिखर पर स्थापित कर लेता है। जैसे बिन्दु ॐ के शिखर पर लिखा जाता है (ॐ)। तो वह न सिर्फ परमात्मा के इस साकार रूप को सम्पूर्ण करता है बल्कि उस दिव्य स्वरुप का हिस्सा बन जाता है इस तरह वह पूजनीय व वन्दनीय हो जाता है। और जो ऐसा कर लेता है अर्थात जो अपने आप को परमात्मा के इस विश्व विराट स्वरुप से इस ढंग से जोड़ लेता है वही योगी कहलाता है और जो ऐसा नहीं कर पाता वह इस संसार में अर्थ हीन नाकारात्मक

जीवन जीता है। और जो इस प्रकार का योग करके योगी बनता है। उसकी सभी कामनायें फलित होती हैं और वह ही मोक्ष का अधिकारी होता है।

लेकिन साधक को यह कार्य असंभव समझ कर निराश नहीं होना चाहिये क्योंकि समय के साथ साथ जैसे जैसे साधक की दृढ़ता बढ़ती जाती है, उसकी बुद्धि को यह परम ज्ञान मयी बात प्रकाशित करती जाती है जैसा कि हम पहले भी अध्ययन कर चुके हैं कि

तत्त स्वयं योग संसिद्ध कालेना त्मानि विन्दति (गीता) लेकिन अब साधक को कुछ उपाय कुछ प्रयास अवश्य करने होंगे ताकि ऐसा योग (कि वह सृष्टि का एक परम आवश्यक व एक सुन्दर हिस्सा है) संभव हो सके। उसके लिये कुछ सुझाव व उपचार आगे दिये जा रहे हैं।

योग करने के लिए कुछ उपाय अथवा तरीके:-

1. श्रवणम् - (सुनना)
2. कीर्तनम् - (गुणगान करना)
3. विष्णु स्मरणम् - (भगवान का चिन्तन करना)
4. पादसेवनम् - (प्रभु के चरण कमलों की सेवा करना)
5. वंदनम् - (प्रणाम अथवा वन्दना करना)
6. अर्चनम् - (पूजा करना)
7. दास्यम् - (दास भाव के साथ सेवा करना)
8. स्नेहम् - (मित्रता करना)
9. आत्म निवेदनम् - (आत्म साक्षात करना)

1. श्रवणम् - (सुनना): क्या सुनना ?

ईश्वर का नाम और गुणों को सुनना, जैसा पाण्डवों के उत्तराधिकारी महाराज परीक्षत ने सुना और सदगति प्राप्त की।

2. कीर्तनम - (गुण गान करना): ईश्वर के गुणों का वर्णन करना और ईश्वर को रिझा लेना। जैसा चैतन्य महाप्रभु ने किया।

3. विष्णु स्मरणम् - (भगवान का चिन्तन करना): हर समय भगवान के नाम का स्मरण करना - जैसा प्रहलाद ने किया।

4. पादसेवनम् - (प्रभु के चरण कमलों की सेवा करना)

जैसी रामायण में प्रभु श्री राम को गंगा पार कराने के समय केवट ने की और

भगवान का परम आशीर्वाद प्राप्त किया।

5. वंदनम् - (भगवान की निरन्तर वन्दना करना): पुराणों में जैसे महर्षि नारद की वन्दना कहीं भी अतुलनीय है।

6. अर्चनम् - (पूजा करना): शिव पुराण के अनुसार महाराज हिमालय की बेटी (पार्वती) ने भगवान शिव को पति के रूप में प्राप्त करने के लिए सप्त ऋषियों के कहे अनुसार शिव की पूजा की और उन्हें पति रुप में प्राप्त किया।

7. दास्यम् - (दास भाव के साथ सेवा करना): रामायण में श्री हनुमान जी ने भगवान श्री राम की सेवा इसी भाव के साथ की और भगवान का दर्जा प्राप्त किया।

8. स्नेहम - (मित्रता करना): गोपियों का भगवान श्री कृष्ण के प्रति परम स्नेह ही ने उन्हें गौलोक अथवा कृष्ण धाम का अधिकारी बना दिया।

9. आत्म निवेदनम् - (आत्म साक्षात करना)

आत्म साक्षातकार - आत्म समर्पण के बिना नहीं होता और आत्म समर्पण के लिये पहले बताये गए आठों उपाय या उनमें से कोई भी एक सहायक होता है। लेकिन पाद सेवनम् अथवा दास्यम् अतवा स्नेहम परम सहायक है। इस सबन्ध में भक्त प्रहलाद के पौत्र महाराज बलि का उदाहरण प्रमुख है।

इन्हीं नौ रास्तों को नवधा भक्ति भी कहते हैं जिसे रामायण में भगवान श्री राम ने शबरी से कहा। भारतीय संस्कृति में 9 नवरात्रों को मनाने में यहां विशेष महत्व है वहीं इन्हीं 9 रातों अर्थात नवरात्रों में इसी नवधा भक्ति को क्रमानुसार जानने का भी महत्व है।

इन्हीं नौ रास्तों में किसी एक पर भी चल के व्यक्ति भक्ति अर्थात अपनी मंजिल जिसे हम आत्म साक्षात कार भी कहते हैं, को प्राप्त होता है। आत्म साक्षात्कार किया हुआ व्यक्ति ही ईश्वर साक्षातत्कार (ईश्वर दर्शन) का अधिकारी होता है। और ईश्वर दर्शन हो जाने के उपरान्त व्यक्ति मुक्ति अथवा मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। और किसी भी साधक का यही अन्तिम लक्ष्य है।

वास्तव में आत्मसाक्षत्कार ही ईश्वर साक्षातकार है। लेकिन यह आत्म साक्षातकार आत्म समर्पण के बिना नहीं होता और आत्म समर्पण करने की क्षमता पीछे बताये गए नौ रास्तों में से कम से कम किसी एक के उपर चले बिना हासिल नहीं होती। और कोई भी व्यक्ति यह आत्म समर्पण तब तक नहीं कर पाता जब

तक वह कर्म बन्धन से मुक्त नहीं हो पाता। लेकिन व्यक्ति पीछे बताये जा चुके रास्ते पर चलते चलते एक दिन इस कर्म बन्धन से मुक्त हो जाता है। यह कर्म बन्धन से मुक्ति ही आत्म साक्षात कार अथवा ईश्वर साक्षात कार है। कर्म बन्धन क्या है ? व्यक्ति जो भी कर्म अथवा क्रिया करता है शीघ्र या देरी से उसका फल शुभ या अशुभ जरुर मिलता है और हर व्यक्ति इस मिलने वाले शुभ या अशुभ फल के प्रति चिन्ता ग्रस्त रहता है। और यही चिन्ता उसे बाँध कर रखती है। कोई भी व्यक्ति जो इन रास्तों का अनुसरण करने लग जाता है तो वह धीरे धीरे चिन्ता या भय मुक्त होने लगता है, चिन्ता मुक्त ही व्यक्ति कर्म बन्धन से मुक्त हुआ समझा जाता है।

लेकिन जिस नवधा भक्ति के रास्तों पर चलने की हम बात कर रहे हैं उस पर सिर्फ वही व्यक्ति विशेष चल पातें है जिनकी मन, चित्त और बुद्धि की एकाग्रता (Concentration) होती है भटकते हुए मन, चित्त व बुद्धि वाला व्यक्ति कदापि इन रास्तों पर या तो चल नहीं सकता और अगर चलें भी तो सफलता हासिल नहीं कर पाता। और यही एकाग्रता व्यक्ति में आ सके उसके लिए ध्यान और ध्यान के विशेष रास्ते अपनाने पड़ते हैं। इसलिए साधक को इस ध्यान और ध्यान के रास्तों को भली प्रकार से जान लेना चाहिये जो इस प्रकार है-

ध्यान और ध्यान लगाने के तरीके:-

ध्यान लगाना या करना जिसे Meditation भी कहते हैं सम्पूर्ण साधना का एक हिस्सा है लेकिन बहुत से लोग इसे ही साधना समझ बैठते हैं। बहुत से लोग जो साधना करते हैं मतलब ध्यान लगाते हैं अक्सर कहते हैं कि उनका ध्यान लगता नहीं जिससे उनका स्पष्टत: यही अभिप्राय रहता है कि ईश्वर के रुप अथवा नाम में उनका ध्यान लगता नहीं अगर लग भी जाता है तो टिकता (स्थिर) नहीं। इधर उधर दूसरी सब तरफ ध्यान भागता रहता है।

देखें, ध्यान क्या है ? सिर्फ मन की एकाग्रता ही तो है इसका एक ही मतलब है कि मन टिकता नहीं इधर उधर भागता रहता है, रुकता नहीं चंचल बना रहता है।

जब कोई कहता है कि मन टिकता नहीं, रुकता नहीं उसके कहने का अभिप्राय होता है कि यहां वह उसे रोकना चाहता है वहां नहीं रुकता कहीं और चला जाता है मन तो रुकता है, लेकिन कहां, यहां उसे रुकने की आदत है, आप

सिनेमा देखते हैं, तीन तीन घण्टे देखते हैं अब मन कहीं जाता ही नहीं, स्थिर रहता है। पर्दे से चिपका रहता है कहीं कोई गलती से भी तुम्हें बुला ले, स्पर्श कर दे तो झट से कहते हो अभी मुझे मत बुलायो अभी मेरा ध्यान उधर सक्रीन पर सिनेमा में है। घण्टों लगा रहता है ध्यान फिल्म खत्म भी हो चुकी हो तो भी उधर ही मन अथवा ध्यान है। अब मन से कहते हैं-भई दो मिनट के लिये भगवान के नाम में लग जाओ। अरे, दो मिनट के लिए भगवान का ध्यान कर लो, कैसे करेगा ? बिल्कुल नहीं करेगा। वह तो वही करेगा, जो ज्यादा देर तक हमेशा करता है। वह तो उधर ही लगेगा, जिधर लगने की उसकी आदत है। उसकी आदत हो चुकी है खुद मर्जी करने की, तुम्हारा कहना मानने की आदत नहीं है पहले उसे इस योग्य बनायो कि वह अर्थात मन तुम्हारा कहना मान सके।
इस विषय पर आगे बढ़ने से पहले एक कोशिश करते हैं मन, चित्त व बुद्धि को संयुक्त रुप में जानने की।

आप ने सागर को देखा है या उसके बारे सुना है। जरा गौर से जानने का प्रयास करें - वहां पर तीन चीजों होती हैं पहली लहरें-दूसरा गहरा पानी-तीसरा लहरों का किनारों से बर्ताव। वायु के वेग की वजह से सागर की ऊपरी सतह पर होने वाली हलचल या पानी की उछल कूद को लहरें कहते हैं और ये लहरें पानी पर उठती रहती हैं और उस पर अपना प्रभाव डालती हैं उसी प्रभाव के फलस्वरुप ज्वार भाटा, तूफान वगैराह आते हैं। ठीक उसी प्रकार से दिखाई देने वाले संसार की वजह से चित्त में इच्छायें उठती रहती हैं, जो कि सागर के ऊपर लहरों के समान हैं और यह गहरे पानी रुपी मन में समाती रहती हैं और उसके फलस्वरुप मन जब कार्यरत होता है बुद्धि कहलाता है और उसके कार्य जिस तरह का भी जीवन में प्रभाव डालते हैं बुद्धि भी उसी प्रकार की समझी जाती है और यही व्यक्ति का चरित्र होता है। साधना द्वार कोई भी साधक अपने इसी चित्त, मन व बुद्धि को सुचारु ढंग से चलाने की कोशिश करता है ताकि वह सद चरित्र वाला व्यक्ति कहला सके।

लेकिन हम बात कर रहे थे कि मन उस प्रकार से कार्य नहीं करता जैसा आपेक्षित होता है या जैसी कोशिश की जाती है क्यों ? आइये मन के बारे कुछ और जानें:-

पानी, दूध, घोड़ा, चाँन्द आदि कुछ नाम हैं, जिनका तुलना मन से की जाती है।

जैसे पानी चंचल है हिलता रहता है चलता रहता है ऐसे ही मन है। जैसे दूध है अगर समय रहते न संभाल की जाये, खराब हो जाता है ऐसे ही मन है। जैसे घोड़ा अगर इसकी रस्सी खोल दी जाये तो यह अवश्य हो दिशाहीन हो जाता है। अन्तिम चाँन्द-जैसे चाँन्द रोज़ ही घटता या बढ़ता है इसी तरह मन भी ज़्यादातर घटता या बढ़ता रहता है। जैसे चाँन्द कभी बिल्कुल अन्धेरे में चला जाता है। जिसे अमावस्या कहते हैं कभी पूर्ण हो जाता हैं जिसे पूर्णमाशी कहते हैं इसी तरह मन भी कभी निराशाओं के अन्धेरे में खो जाता है और कभी अपनी इच्छाओं को पूर्ण होते हुए पाता है चाँद जैसे शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष दोनों में चलता है उसी तरह मन भी कभी आशावादी (शुक्ल पक्ष वाला) होता है कभी निराशा वादी (कृष्ण पक्ष वाला) होता है। जैसे चाँन्द हमें रोशनी तो देता है लेकिन यह रोशनी उसकी खुद की नहीं होती बल्कि सूर्य की ही रोशनी होती है उसी प्रकार हमारे मन का अपना कोई अस्तित्व नहीं होता है बल्कि हमारी आत्मा जो कि परमात्मा का ही अंश होती है उसी की ही परछाई होता है।

मन के बारे हमारे पुरातन ग्रन्थों में जो एक विचार लिखा हुआ है वह यह है कि मन एक विचारों का पुलिन्दा है Mind is bundle of thoughts. अगर इस पुलिन्दे में से एक एक करके विचार कम कर दिए जायें तो मन नाम की कोई चीज़ नहीं रहती। जैसे अगर हम एक कपड़ा लें और गौर से देखें तो हम पाते हैं कि कपड़ा और कुछ नहीं धागों का ताना वाना ही है अगर इन धागों को एक एक करके निकाल दिया जाये तो कपड़ा नहीं रहता। इस लिए तमाम साधना तमाम कोशिश यही है कि अब्वल तो यह मन रहे न, अगर रहे भी तो कहना मानने वाला हो, जैसे बन्धा हुआ प्रशिक्षित किया हुआ घोड़ा, झील की तरह रुका हुआ या रोका हुआ नदी का पानी। और दूध - जैसे दूध को गर्म करके फिर उसे कुछ ठण्डा करके दही का स्पर्श (जाग) दे कर, फिर उस जम चुके दूध मतलब दहीं को मथानी से मथ कर मक्खन और छाछ (लस्सी) अलग अलग कर दी जाती है, फिर उस मक्खन को बर्तन में गर्म करके उसमें से भी बचा हुआ पानी खत्म करके घी निकाल लिया जाता है और फिर उस घी से दीपक जला कर प्रकाश प्राप्त किया जाता है। ठीक इसी प्रकार से मन रुपी दूध को श्रद्धा, विश्वास, धैर्य और क्षमा रुपी अग्नि में गर्म करके ईश्वर नाम रुपी जाग लगा कर शान्ति रुपी दहीं जमा लिया जाए। फिर इस दहीं में चिन्तन रुपी मधानी डाल कर सद चरित्र, सद

विचार रुपी शुद्ध मक्खन प्राप्त करके खटास रुपी (ईर्ष्या, घृणा, अहंकार) लस्सी को फैंक दिया जाये।

फिर इस सद चरित्र व सद विचार रुपी मक्खन को नवधा भक्ति रुपी भट्टी की आंच पर गर्म करके इसमें रसा हुआ तृष्णा रुपी जल सुखा करके प्रेम रुपी शुद्ध घी में सत्व गुनी रूई की बत्ती बना कर गुरु कृपा रुपी अग्नि से जला करके दिव्य प्रकाश प्राप्त कर के जीवन के समस्त माया या अज्ञान रुपी अन्धेरों को मिटा करके आत्म दर्शन या ईश्वर दर्शन होते हैं। और इसी दिव्य प्रकाश में आत्म दर्शन हो जाने उपरान्त कर्मों से मुक्ति प्राप्त करके साधक सोहम या अहम् ब्रह्मास्मि का उद्घोष करने के योग्य हो जाता है।

मन इसी तरह से कार्य कर सके इसके लिए साधना की आवश्यकता है। और साधना के लिए जिन बातों की आवश्यकता है, वे इस प्रकार है:-

साधना अथवा ध्यान के तरीके: ध्यान करने का सबसे उपयुक्त समय सुबह सूर्य निकलने से पहले का होता है। साधक को किसी पट्टे अथवा गद्दे पर अपना आसन बनाना चाहिये या जैसा भी आसन अपनी सुविधा अनुसार बना सके बनाना चाहिए। लेकिन एक बात को ध्यान रखना चाहिये कि रोज़ आसन और स्थान बदलना नहीं चाहिए। पदमासन या सुखासन में बैठना चाहिऐ। ध्यान रखने योग्य है कि साधक बैठते समय रीढ़ की हड्डी, गर्दन व अपना सिर ऊपर को उठा हुआ व सीधा रखे-अकड़ा हुआ नहीं बल्कि शरीर को साधारण दशा में रखते हुए सीधा रखें। साधक को किसी भी तरह से सांस लेने में कोई परेशानी न होती हो। साधक को खुली हवा में या हवादार कमरे में बैठना चाहिए। ध्यान करने वाले स्थान के नजदीक किसी तरह का शोर न हो। ध्यान करने से पूर्व एक चौंकी पर अपने गुरु अथवा इष्ट देव की मूर्ति रख कर ज्योति जगा लेनी चाहिए। सीधे बैठ कर पहले ज्योति की तरफ देखते हुए साधक को अपने ईष्ट, देव गुरु का नाम जपना चाहिए या फिर गुरु से मिला हुआ कोई शब्द अथवा नाम जपना चाहिए ऐसा करते हुए उसकी नज़र ज्योति पर टिकी रहनी चाहिए। शुरु शुरु में ऐसा अपनी शरीर की सुविधा और तन्दरुस्ती के मुताबिक ही करना चाहिए। सुविधा अनुसार ही समय लगाना चाहिए।

धीरे धीरे जैसे जैसे समय बीतता जाये, दिन बीतते जायें आंखों को बन्द करके ज्योति का ध्यान करते हुए उसी नाम को जपना चाहिए जिसे शुरु से जप

रहें हो बार बार शब्द अथवा नाम को बदलना नहीं चाहिये। अगर शब्द अथवा नाम किसी गुरु से नहीं लिया गया तो ॐ का जाप ही पर्याप्त है। वैसे भी ॐ शब्द "अनहद" शब्द है और बाकी सभी शब्द इसी एक ॐ शब्द से आये हुए है यां इसमें समाये हुए हैं चर्चा को आगे बढ़ाने से पहले ॐ शब्द के उच्चारण और महत्व को जानना परम आवश्यक है।

ओ३म शब्द के बारे में कुछ जानकारी: हमारे ग्रन्थों में ऐसा वर्णन आता है कि इस सृष्टि की उत्पत्ति एक विस्फोट (आवाज, ध्वनि) के साथ हुई। विज्ञान भी इस बात से सहमत है और इसे Theory of big bang से पुकारता है।

वर्णन इस प्रकार से आता है कि जब सृष्टि की उत्पत्ति हुई। उससे पहले क्षण में एक बहुत भारी विस्फोट हुआ और उस विस्फोट की वजह से एक ध्वनि गूँजने लगी और वही ध्वनि आज भी गूँज रही है। लेकिन संसार के शोर (Noise) के कारण वह ध्वनि हमें सुनाई नहीं पड़ती। हां कभी कभार जब हम इस शोरो गुल से दूर कहीं एकान्त से गुजरते हैं या बैठते हैं तब हमें एक प्राकृतिक आवाज (शां-शां के रुप में) सुनाई पड़ती है यह वही आदि ध्वनि है। लेकिन इसे सुनने के लिए अगर हम अपने कानों के ऊपर हाथ रख लें ताकि दुनिया का शोर हमें सुनाई न पड़े तो हमारे कानों में भी एक आवाज़ शां-शां करती हुई सुनाई पड़नी शुरु हो जाती है। यह वही ध्वनि है। कान तो बन्द हैं, बन्द कानों से आवाज सुनाई पड़ती है यह कैसे ? यह बात भी सर्वमान्य है कि जो ध्वनि आदि सृष्टि की उत्पत्ति के समय हुई वही ध्वनि आज भी सृष्टि में न सिर्फ गूँज रही है बल्कि सृष्टि के कण कण में गूँज रही है आकाश, पाताल, पृथ्वी हर जगह हर समय। इसलिये वह ध्वनि हमारे इस शरीर के बाहर ही नहीं अन्दर भी गूँज रही है, क्योंकि बाहर शोर गुल बहुत है इसलिये बाहर की तो क्या अन्दर की आवाज भी सुनाई नहीं पड़ती लेकिन यूँ ही हम अपने कानों को बाहर के शोर गुल से बचा लेते हैं हमें तुरन्त ही भीतर गूँज रही आवाज या ध्वनि सुनाई पड़नी शुरु हो जाती है। हमारे ऋषियों ने, पुरातन वैज्ञानिकों ने इस ध्वनि को ध्यान से सुना और वे इस तथ्य तक पहुँचे कि यह ध्वनि ओ३म शब्द के बोलने पर जो ध्वनि बनती है उस जैसी है। इसी लिए उन्होंने इस आदि ध्वनि को ओ३म शब्द ध्वनि कह कर पुकारा। और उस ओ३म शब्द को शब्द परब्रह्म कहा, अनादि शब्द कहा और अनहद शब्द कहा। क्योंकि बाकी सारी ध्वनियां या शब्द इस ध्वनि या शब्द के

बाद पैदा हुए इसलिए यह परब्रह्म शब्द कहलाया क्योंकि यह सबसे पुरातन है इस लिए आदि, अनादि कहलाया। क्योंकि यह सदैव ही गुंजाएमान है (गूँजता रहता है) किसी हद या सीमा के अन्दर बन्धा हुआ नहीं है इस लिए अनहद शब्द है। सृष्टि की यह गूँज मन्दिर में बजने वाले घड़ियाल अथवा घण्टे की गूँज से पूर्णयता मिलती है इसलिये हमारे ऋषियों ने मन्दिरों में यहां दूसरे असंख्य कारणों से मन्दिर में घण्टा लगाने की प्रेरणा दी वहीं एक यह भी कारण है कि जब भी कोई जिज्ञासु इस घण्टे को बजाएगा कभी न कभी उसका ध्यान उस महां ध्वनि की ओर अवश्य जायेगा जो इस सृष्टि में हर समय गूँजती ही रहती है। आज के वैज्ञानिक युग की देन हवाई जहाज की, (दूर से आते हुए फिर बिल्कुल हमारे ऊपर से गुजर कर फिर दूर जाते हुए) ध्वनि भी सृष्टि की निरन्तर चलने वाली गूँज से मिलती है। यह आवाज पहले सुनाई पड़नी शुरू होती है फिर तेज़ होती है और फिर धीरे धीरे क्षीण हो जाती है। इस तरह ये आवाज तीन पड़ाव मे या तीन हिस्सों में हमें सुनती है। बिल्कुल इसी प्रकार से हमारे ऋषियों मुनियों ने सृष्टि की आवाज को पहचान कर जब इसका विषलेशण किया तो पाया कि यह आवाज भी तीन हिस्सों में बँटी हुई है और इसी कारण से उन्होंने इस ध्वनि को ओ३म ध्वनि कह कर पुकारा क्योंकि जब ओ३म का उच्चारण हम करते हैं तो पाते हैं कि ओम की ध्वनि भी तीन हिस्सों मे बँटी हुई है। आरम्भ हो कर तेज व ऊँची फिर धीरे धीरे मध्यम पड़ती पड़ती क्षीण हो जाती है। हम भी ओम शब्द का उच्चारण करें तो देखते हैं कि इस अकेले एक ओम में तीन शब्द निहित हैं अ, ऊ, म।

अ - से आरम्भ करने वाला

ऊ - से ऊर्जा प्रदान करने वाला

म - मंगल करने वाला

अर्थात यह ओ३म ही इस सृष्टि को आरम्भ करता है, ऊर्जा प्रदान करता है और इसका समस्त प्रकार से मंगल करता है। हमारे पुरातन ग्रन्थों अनुसार ईश्वर द्वारा जब यह सृष्टि प्रकट की गई तो इसका सुचारू ढंग से रख रखाव करने के लिये उसने अपने आप को व अपनी शक्ति को तीन भागों में बांट लिया। वह अपनी इन्हीं तीनों शक्तियों द्वारा इस सृष्टि को गतिशील रखता है। इस सृष्टि में हमेशा तीन तरह के कार्य होते रहते हैं। 1. निर्माण कार्य 2. देख रेख का कार्य 3.

विध्वंस का कार्य। ये तीनों कार्य ईश्वर खुद अपने आप को तीन हिस्सों में बांट कर करता है। जब वह निर्माण कार्य करता है, तो ब्रह्म कहलाता है जब वह सृष्टि का पालन पोषण और उचित देख रेख करता है तो विष्णु कहलाता है और जब सृष्टि द्वारा अपने बनाये विधि विधान की उल्लंघना होते देख, इसे सही दिशा निर्देश देता है या इसे दण्डित करता है फिर या इसका विनाश करता है तो शिव कहलाता है।

अपने विचाराधीन शब्द ओ३म में भी जो तीन शब्द समाये हुये हैं क्रमशः अ, ऊ, म यही बात स्पष्ट करते हैं कि वही तीनों शक्तियां, इस सृष्टि का सृजन (आरम्भ करने वाली (2) इसका पालन पोषण करने वाली और इसका हर तरह से मंगल करने वाली यानि ब्रह्मा, विष्णु व महेश ये सभी इसी ओ३म शब्द में समाये हुए हैं और यहां एक बात और भी स्पष्ट हो जाती है कि जैसे ओ३म एक हो कर भी तीन है और तीन होते हुये भी एक है ठीक इसी तरह वह ईश्वर भी एक हो कर तीन तो क्या (ब्रह्मा, विष्णु व महेश)अनेकों -अनेक हैं और अनेकों अनेक हो कर भी एक हैं। इस तरह जब हम ओ३म का उच्चारण करते हैं तो हम वास्तव में उसी परमेश्वर के नाम का ही उच्चारण करते हैं। क्योंकि ईश्वर को हम ब्रह्म भी कह कर पुकारते हैं इसलिये ओ३म को शब्द ब्रह्म भी कहते हैं। सृष्टि की समस्त ध्वनियां यानि शब्द इस शब्द 'ब्रह्म' के बाद ही पैदा हुये लेकिन अगर थोड़ा गौर से जांच पड़ताल हो तो पता चलता है कि सृष्टि में शब्द तो सिर्फ एक ही है बाकी सभी शब्द इसी शब्द के रूपान्तर हैं जैसे पहले भी हम एक उदाहरण नटराज की लेकर यह जान चुके हैं कि जैसे एक नृत्य कलाकार की असंख्य अलग अलग मुद्रायें हो सकती हैं लेकिन उन सब मुद्राओं के करने वाला कलाकार एक ही होता है उसी तरह यह शब्द ओ३म ही वास्तविक एक अकेला शब्द है बाकी सभी शब्द तो इसी एक शब्द के रूपान्तर हैं इसको भी एक दूसरी उदाहरण द्वारा समझने की कोशिश करते हैं।

एक हारमोनियम बजाने वाला जब उस में हवा भरता है तो वह एक ही प्रकार की हवा भरता है, लेकिन जब वह बटन दबा कर हारमोनियम से संगीत निकालता है तो आवाज़ वैसी होती है जैसा बटन दबाता है। अलग अलग बटन से अलग अलग आवाज़ या संगीत निकलता है लेकिन सभी तरह के संगीत या आवाज़ के पीछे एक ही हवा है। और अगर सभी तरह के अलग अलग बटन

हटा दिये जायें तों सारी हवा एक ही तरह का संगीत या ध्वनि निकालेगी। इसका तात्पर्य यह हुआ कि एक हवा अलग अलग आवाज़ों में विघटित होती है और ठीक इसी तरह एक शब्द ओ३म बाकी सब दूसरे शब्दों में विघटित हो जाता है। इसी तरह हम अपने अद्वैत के विचार में और भी परिपक्व हो जाते हैं कि वह एक ही ईश्वर अलग अलग तरह असंख्य या करोड़ों-करोड़ों रूपों और नामों में विघटित हुआ है जिस में हम भी शामिल हैं। वास्तव में मैं, तुम या हम सब या यह सारी की सारी सृष्टि जो अलग अलग तरह से दिखाई दे रही है माया का पर्दा हटते ही एक ही नज़र आने लगती है, क्योंकि असल में यह एक ही है, और इस एक को ही ईश्वर कहते हैं। लेनिक जो प्रज्ञावान व्यक्ति है, इस एक में अनेक को देख कर भी एक ही कहता है और इस अनेक को भी परमेश्वर या ईश्वर ही कहता है। ओ३म शब्द के बारे कुछ जानकारी प्राप्त करने के बाद हम पुन: उसी बात पर लौटते हैं कि साधना में लगे हुये व्यक्ति के पास अगर गुरू द्वारा सिखलाया गया कोई मन्त्र विशेष नहीं है, तो उसे ओ३म का उच्चारण करना चाहिये। पहले पहल आंखें खोल कर, ज्योति को देखते हुये, फिर अभ्यास के बढ़ने के बाद आंखें बन्द करके। ओ३म का उच्चारण, पूरा श्वास भर कर नाभि से प्रारम्भ करके, कण्ठ तक लाने के बाद होठों को बन्द रख कर मस्तिष्क में एक गूँज व कंपन पैदा करते हुये पूरा करना है। इसका अन्तराल जितना लम्बा हो सके करना है। ऐसा करने से शुरू शुरू में साधक को आध्यात्मिक लाभ बेशक न नज़र आये लेकिन शारीरिक लाभ अवश्य होने लगता है। फेफड़ों में पूरी हवा भरने के कारण हमारी श्वास प्रक्रिया मज़बूत होती है। कब्ज़ को फायदा होता है हमारी रीड़ की हड्डी भी अपेक्षाकृत बेहतर होने लगती है और हमारे दिमाग के सुस्त रहने वाले जीवाणु चुस्त होने लगते हैं, जिससे साधक की यादाश्त में पर्याप्त बढ़ोतरी होने लगती है। सिर दर्द (Migrain Pain) में भी यह लाभदायक रहती है। आंखे बन्द करके ओ३म बोलते समय ज्योति को अपने मस्तिष्क के भीतर देखने का अभ्यास करना चाहिये। साधक को कई बार इसमें बिल्कुल भी सफलता नहीं मिलती तो कई बार आंशिक सफलता ही मिलती है। अगर ऐसा है तो भी साधक को निराश नहीं होना चाहिये, बल्कि दृढ़ निश्चिय से अभ्यास में लगे रहना चाहिये। इसके बेहतर नतीजे लेने के लिये साधक को एक दूसरा अभ्यास भी साथ साथ कर लेना चाहिये, अगर बैठे बैठे ही करे तो बहुत ठीक है

लेकिन अगर थकावट या किसी दूसरी वज़ह से ठीक नहीं है तो शव आसन यानि लेट कर भी कर सकते हैं। यह क्रिया एक कल्पना (Imagination) करने जैसी है। पूरी प्रक्रिया को जानने से पहले इस कल्पना करने की युक्ति को भी हम ठीक ढंग से समझ लें तो बेहतर रहेगा।

बहुत सारे लोग कल्पना या कल्पना शक्ति की बात करते हैं। जीवन में हम बहुत सारी बातें भी काल्पनिक करते हैं। जीवन में हम बहुत सारी बातें ऐसी करते हैं जिनका यथार्थ से कोई सम्बन्ध नहीं होता, और कभी कभी ऐसी बातें भी करते हैं जिनका यथार्थ से पूरा सम्बन्ध होता है। कल्पना करते समय हम कई बार उन चीज़ों अथवा बातों के बारे सोचते हैं, जिन्हें हम जानते या पहचानते होते हैं, उन बातों के बारे भी सोचतें है जिन्हें हम सिर्फ जानते हैं, पहचानते नहीं हैं और कई बार उन चीज़ों या बातों के बारे सोचते हैं जिन्हें न जानते हैं न पहचानते हैं। ईश्वर के बारे भी तीनों तरह के लोग सोचतें हैं या ध्यान करते हैं लेकिन जो लोग कहते हैं कि हम जब भी ध्यान लगाते हैं, लगता ही नहीं वो तीसरी तरह के होते हैं जो न ईश्वर को जानते हैं न पहचानते हैं।

आम जीवन में भी हम जिसके बारे न कुछ जानते हैं न पहचानते हैं अगर वह खुद भी हमारे ऊपर कृपा करके हमारे सामने आ जाये तो भी कोई फायदा नहीं यहां तक कि वो अपनी पहचान खुद भी देने लगे, तो भी हम संशय में डूबे रहेंगे कि कही यह व्यक्ति झूठ तो नहीं बोल रहा। पहले चरण (Part I) में हमने जितनी भी जानकारी ली सब इसीलिये ही थी ताकि हमें ईश्वर के बारे जान सके व उसे पहचान सकें ताकि जब भी हम उसका ध्यान करें उसी वक्त वह हमारे ध्यान में आ जाये।

जिसको मैं ऊपर की पंक्तियों में कल्पना या कल्पना शक्ति कह रहा था वो सब भी एक तरह का ध्यान ही है। कल्पना करके सोचना, मतलब ध्यान करना ही है। वो सब बातें हमारी कल्पना में, यानि हमारे ध्यान में तुरन्त आ जाती हैं जिनकी वाकफ्यित हमें पहले से होती हैं। इस बात को हम एक उदाहरण द्वारा समझते हैं—

मान लीजिये आप अपने दफ्तर में बैठे हैं, आपका कोई दोस्त आपसे पूछ बैठता है कि आपके घर का नक्शा क्या है? आप तुरन्त उसे बताना शुरू कर देते हैं कि हमारे घर के प्रवेश पर एक लोहे का गेट हैं, प्रवेश द्वार से आगे चलकर

पहले एक दायीं तरफ कमरा है, फिर रसोई है फिर एक कमरा है, फिर सीढ़ी है उसके सामने की तरफ दो कमरे और हैं आदि आदि। यहां तक कि आप उसे अपने कमरे में किये गये रंग रोगन के बारे में भी बता सकते हैं, कैसे-क्यों ? क्योंकि आपका अपने घर से, घर की हर चीज़ से रोज़ का वासता है। आपकी हर चीज़ से भली प्रकार से जान पहचान है, हर चीज़ आपके मन में, आपके ध्यान में पूरी तरह से समायी हुई हैं। अब आपको पूछे जाने पर ज्यादा ज़ोर लगाने की ज़रूरत नहीं है बस थोड़ा सा मन में ध्यान लगाया कि आपको अपना घर नज़र आने लगा आप फटाफट सब कुछ बताने लगे। और यह ध्यान या आपका अपने घर को देखना, आप कहीं पर भी बैठ कर सकते हैं दफ्तर में, गाड़ी में, खाते हुये, चलते हुये, नहाते हुये मतलब आप किसी भी हालत में हों कोई फर्क नहीं पड़ेगा। आपको किसी विशेष तरह के आसन की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। इसी तरह अगर आप का ईश्वर के साथ नज़दीक का सम्बन्ध है, जान, पहचान है, तो आपको उसे अपने ध्यान में लाने के लिये या अपना ध्यान उसकी तरफ करने के लिये कोई मुश्किल भरा कार्य या चेष्टा नहीं करनी पड़ेगी, बस बात होते ही ध्यान शुरू।

हम इस तरह के ध्यान के काबिल हो जायें, हम इस तरह से ईश्वर के बारे कहने के काबिल हों। हमें पहले अध्याय में बतायी गयी बातों पर तो अमल करना ही होगा लेकिन अपनी कल्पना शक्ति को थोड़ा मज़बूत भी करना पड़ेगा। इसके लिये हमें आगे बताये जा रहे तरीके के मुताबिक एक प्रक्रिया में से गुज़रना होगा।

इस प्रक्रिया में हम दिन में किसी भी समय थोड़ा एकान्त में बैठ जाते हैं। और हम कल्पना करनी शुरू करते हैं कि मैं आज नहर के किनारे घूमने जाऊंगा। इसके लिये आप अपने अच्छे कपड़े पहन कर तैयार हो जाते हैं, तैयार हो कर चलने से पहले आप अपने घर वालों को बता देते हैं कि मैं नहर पर घूमने जा रहा हूँ। नहर आपके घर से कुछ दूरी पर है इसलिये आप एक रिक्शा वाले से कह कर वहां पहुंच जाते हैं,आप वहां पहुंच कर रिक्शा वाले को किराया दे कर उसे धन्यवाद भी करते हैं, कि उसने आपको नहर तक पहुँचा दिया यूँ तो आपने उसे किराया दिया लेकिन धन्यवाद इन्सानियत के नाते कहते हैं। नहर के साथ एक फूलों भरा पार्क भी है आप वहां चले जाते हैं। पार्क में बहुत सारे लोग पहले से बैठे हैं कुछ सुस्ता रहे हैं, कुछ बातें कर रहें है और कुछ हँसीं मज़ाक। क्योंकि

आप बिल्कुल अकेले हैं इसलिये आप कभी यहां कभी वहां घूमते रहते हैं और थक जाने के बाद एक जगह बैठ जाते हैं। आप बैठे ही थे, कि एक तितली आपके कन्धे पर आकर बैठ गई आपको बहुत अच्छा लगा आपकी तो जैसे थकान ही खत्म हो गई। आप जहां बैठे थे वहीं लेट गये, ठण्डी ठण्डी हवा के कारण आपकों नींद आने लगी। थोड़ी देर बाद जागने पर आप घर के लिये वापस चले। वापस चलने से पहले आप मन ही मन एक सन्तुष्टि महसूस कर रहे थे जिसके लिये आप अपने दिल से तितली को, फूलों को, ठण्डी हवाओं को धन्यवाद कह रहे थे और फिर कभी वापस आने का वादा करने लगे। इस तरह एक सुकून भग समय गुज़ारने के बाद आप वापस घर पहुँच गये।

लेकिन यह सब आपने अपने ख्यालों में, कल्पना में ही किया। और ऐसा करने के बाद आपने असलियत में भी एक राहत महसूस की। ऐसा थोड़े दिन लगातार करने के बाद हम उस प्रक्रिया को करने के काबिल हो जाते हैं जो कि कोई भी साधक सफलता पूर्वक करना चाहता है और जिसके फलस्वरूप वह कह सकता है कि अब मेरा ध्यान लग जाता है। इस प्रक्रिया को थोड़े दिन करने के बाद हम एक दूसरी प्रक्रिया की शुरूआत करते हैं जो कि हमारे वास्तविक ध्यान का ही एक अंश है। और यही प्रक्रिया के फलस्वरूप हम ध्यान से मिलने वाले आध्यात्मिक लाभ को भी प्राप्त होना शुरू कर देते हैं।

इस में साधक सरल (सुख) आसन में बैठ कर अपनी पीठ गर्दन व सिर को सीधे रखते हुये पहले ज्योति को थोड़ी देर खुली आंखों से देखने के बाद, आंखों को बन्द कर के देखता है। जब वह ज्योति को आंखें बन्द करके देखताहै या देखने में सफल होता है तो वह उस ज्योति को अपने पैरों के नज़दीक ले आता है, (ध्यान में ही उठा कर नहीं) पहले वह ज्योति को अपने दायें पैर पर लाता है फिर एड़ी पर और फिर उसे अपनी टांग के ऊपर उठाता है ऐसा करते हुये साधक अपना पैर, एड़ी, टांग सब कुछ उस ज्योति के प्रकाश में देखता है। फिर उस ज्योति को अपने घुटने पर घुमा कर अपनी जांघ और बाद में कमर के हिस्से तक ले आता है फिर इसी तरह से बायें पैर से पूरी टांग पर ज्योति को घुमा कर कमर के हिस्से तक ले आना है। अब इस ज्योति को दोनों टांगों के बीच मूलाधार के स्थान पर ले आना है। इसी स्थान पर ज्योति को थोड़ी देर तक रखना है। और मूलाधार के समस्त स्थान को ज्योति के प्रकाश में प्रकाशित करना है।

क्योंकि मूलाधार ही वास्तव में शरीर का वो हिस्सा है जहां पर इन्सान का समस्त ज्ञान कुण्डलिनि (सुस्त अवस्था में) मार कर बैठा रहता है और यही वजह है कि आम इन्सान की सारी सोच इसी मूलाधार की परछाईं के नीचे दबी रहती है जिसके कारण वह अधिक से अधिक काम वासना के प्रति सजग रहता है और इसी की पूर्ति हेतु खाता पीता और न जाने क्या-क्या चेष्टा करता है। ज्योति को इस मूलाधार में स्थित करना और थोड़ी देर उसके प्रकाश को यहां फैलाने के फलस्वरूप यह कुण्डलिनि मार कर बैठा हुआ ज्ञान रूपी सर्प ज्योति के प्रकाश और तेज़ के कारण अपनी सुस्ती को खोने लगता है और सजग होना शुरू कर देता है। यह बिल्कुल ऐसे होता है जैसे सर्दी के कारण कोहरे में बैठा हुआ सर्प लगभग मरण अवस्था में होता है लेकिन जब उसके नज़दीक आग जला दी जाती है तो वह उसकी तपश में खुद को चुस्त महसूस करता है और अपने फन को ऊपर की ओर उठा देता है। ठीक इसी प्रकार यह ज्ञान रूपी सर्प भी ऊपर की ओर उठने लगता है और उठता उठता यह सहस्तार तक पहुँच जाता है जिसे ज्ञान का शिखर कहते हैं।

यहां मैं पूरा कुण्डलिनी योग पर चर्चा नहीं कर रहां हूँ और न ही मुझे इसके बारे में अधिक जानकारी ही है, क्योंकि मुझे अपने जीवन में इस कुण्डलिनी योग की आवश्यकता नहीं पड़ी और इसका कारण है। मुझे ''भगवान श्री सत्य साईं बाबा जी'' का सुदर्शन और स्पर्शन का प्राप्त होना।

इस स्थान पर थोड़ी देर ज्योति को रोकने के बाद ज्योति को मेरूदण्ड (रीड़ की हड्डी) के साथ-साथ ऊपर ऊँचे उठाते जाना है। गर्दन के स्थान पर ले जा कर ज्योति को बारी-बारी दोनों बाजुओं पर हाथों की उँगलियों तक घुमाना है ऐसा करने के बाद ज्योति को गर्दन के पिछले हिस्से से ऊपर उठाते हुये सिर के शिखर (चोटी) तक ले जाना है यहां से ज्योति को आगे मस्तक के बीच ले जाकर दोनों भौंहों के बीच यहां पर तीसरा नेत्र छिपा रहता है स्थापित कर देना है। यहां पर भी ज्योति को स्थापित करके प्रकाश को फैलने देना है और इतना फैलने देना है कि खोपड़ी के भीतर दिमाग के समस्त उपकरण प्रकाशित हो उठें और यही वो स्थान है, यहां से बुद्धि समस्त ज्ञान को प्राप्त होती है। इसी प्रकाश की उपस्थिति में ही बुद्धि यह निर्णय करने योग्य होती है कि ईश्वर क्या है और कैसे कार्य करता है और मेरा उस ईश्वर से क्या नाता है। फिर इसी प्रकाश की

मौजूदगी में ही बुद्धि निर्णय कर पाती है कि कर्म कैसे करना है और कर्म बन्धन से कैसे मुक्त हुआ जा सकता है। मोक्ष इन्हीं सब बातों का परिणाम होता है। लेकिन इसी प्रकाश के तेज़ के फलस्वरूप यहां बुद्धि में परम ज्ञान हासिल होता है वहीं अहं का जन्म भी होने लगता है। और बुद्धि में जप का, तप का, भक्ति व ज्ञान का अहं जीवन के बाकी सब प्रकार के अहं से ज्यादा खतरनाक अथवा घातक होता है, जिसके फलस्वरूप मनुष्य अहं के साये में ही समस्त कार्य करने शुरू कर देता है, जिससे मनुष्य अपनी मंजिल को प्राप्त करने के बाद फिर से खो देता है और अपने जीवन को नष्ट भ्रष्ट कर लेता है। इसी को योग भ्रष्ट कहते हैं। ऐसा न हो, इसके लिये उपचार करना पड़ता है। जिस तरह से कोई किसान जब खेत में धान बीजता है तो धान के साथ-साथ ही घास फूस भी उगने लगते हैं जो समझदार किसान होता है वह इसघास फूस को खत्म करने के उपाय ढूँढ ही निकालता है। इसके लिए हमें ज्योति व इसके प्रकाश का स्थान बदलना पड़ता है और हमें ज्योति को बुद्धि के स्थान से उठा कर हृदय के स्थान पर ले आना है क्योंकि अहंकार का संबंध सिर्फ और सिर्फ बुद्धि से होता है। हृदय में तो बस प्रेम ही प्रेम होता है। समर्पण व त्याग भी मनुष्य हृदय से करता है बुद्धि द्वारा सोच कर कोई भी मनुष्य न समर्पण कर सकता है न त्याग। बिना समर्पण किये और बिना त्याग किये कोई भी मनुष्य उस ज्ञान को तो हासिल कर सकता है लेकिन मोक्ष नहीं। ज्योति को हृदय पर ला कर अच्छी तरह से स्थापित कर देना है। और इसके प्रकाश को फैलने देना है। हृदय शरीर का एक ऐसा उपकरण है जो पूरे शरीर को रक्त का संचार करता है और वह भी शुद्ध रक्त का। इसी तरह अब इसी स्थान से ज्योति के प्रकाश का भी शरीर के समस्त हिस्सों में भी संचार करना है जिस तरह हृदय कोई भेद भाव नहीं करता, अब भी कोई भेद भाव नहीं करना। जिस तरह जैसे कोई भी साधारण मनुष्य यह जानता है और कह सकता है है रक्त उसके शरीर में पूरी तरह से प्रवाहित हो रहा है ठीक इसी तरह साधक भी अब कह सकता है कि प्रकाश उसके शरीर में पूरी तरह से प्रवाहित हो रहा है। और अचानक ही साधक यह घोषणा कर बैठता है कि

प्रकाश (मेरे) अथवा (उसके) भीतर है।

साधना पथ पर चल रहे साधक के लिये ऐसा महसूस कर लेना एक बहुत बड़ी उपलब्धि (Achievement) है। हालांकि साधक को इतनी प्राप्ति में काफी

समय लग सकता है फिर भी मन को उत्तेजित नहीं होने देना है और इसी उपलब्धि को बनाए रखना है। वैसे साधक को अभी और आगे बढ़ना है लेकिन ज्यादा जल्दी नहीं दिखाना है और इसी Practice को बनाये रखना है।

जैसा कि हमने पिछली चर्चा में यह जाना कि साधक द्वारा यह महसूस हो पाना कि प्रकाश मेरे भीतर है, अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। इस बात को जान पाना या महसूस कर पाना बिल्कुल वही बात है कि ईश्वर मेरे भीतर है।

कई बार हम सतसंग में सन्तों से गुरुओं से यह सुनते हैं कि ईश्वर हमारे भीतर है तो हमें उनकी बात या तो समझ नहीं आती और अगर समझ आती है तो उस पर विश्वास नहीं होता। प्राय: हम विश्वास उन्हीं बातों पर करते हैं जिनका प्रमाण होता है और इस बात का प्रमाण कि ईश्वर हमारे अथवा मेरे भीतर है, भी हमें स्वयं ही जुटाना पड़ता है, गुरू जन तो सिर्फ हमें बात (मन्त्र) बता सकते हैं प्रमाण नहीं क्योंकि प्रमाण तो हमारे भीतर है और इसे अगर हमने जुटाना है तो हमें साधना पथ पर चलना ही पड़ेगा।

हालांकि इससे आगे और बहुत कुछ रह जाता है जो हमें हमारे गुरूजन बताना चाहते हैं, लेकिन क्योंकि हमे पहली ही बात पर सहमत नहीं होते उस पर अमल नहीं करते तो वो हमें आगे की बात भी नहीं बतलाते।

इस तरह साधक को यह जान लेने के बाद कि प्रकाश मेरे भीतर है, साधना में लगे ही रहना चाहिये। साधक जो अभी महसूस कर रहा कि जैसे हृदय से रक्त शरीर की तमाम धमनियों, कोशिकाओं यहां तक कि नाखुनों और सिर के बालों में भी निर्विघ्न प्रवाहित हो रहा है ठीक उसी तरह से यह प्रकाश भी सम्पूर्ण शरीर में अपना प्रकाश व तेज़ दे रहा है। किन्तु रक्त और प्रकाश के प्रवाह में एक अन्तर है। रक्त का प्रवाह शरीर तक सीमित है प्रकाश का नहीं। प्रकाश शरीर की सीमाओं को पार कर जाता है और जो साधक इस साधना में लगा रहता है वही इस रहस्य को जान पाता है। वह महसूस करता है कि प्रकाश उसके शरीर में से इसी तरह बाहर जा रहा है जैसे किसी पारदर्शी शीशे से साधरण रोशनी पार हो जाती है। साधना में निरन्तर लगे रहने पर साधक यह भी महसूस करता है कि जो प्रकाश उसके शरीर से बाहर आ (जा) रहा है वह उसके इर्द गिर्द फैलता ही जा रहा है और क्योंकि यह फैलाव रुकता ही नहीं, थमता ही नहीं उससे निकला हुआ यह प्रकाश सम्पूर्ण विश्व में, ब्राह्मांड में फैल रहा है और यह अपने स्वभाव

अनुसार हर चीज़ को प्रकाशित कर रहा है और तेज़ प्रदान कर रहा है। धीरे धीरे साधक यह महसूस करने लगता है कि उसी से निकला हुआ प्रकाश ही समस्त विश्व को प्रकाशित कर रहा है। और साधक यह कह सकता है सम्पूर्ण विश्व में कहीं भी अन्धेरा नहीं है प्रकाश ही प्रकाश है और मैं इस तमाम प्रकाश के भीतर हूँ।

मैं प्रकाश के भीतर हूँ यह जान पाना साधक की इस मार्ग पर दूसरी उपलब्धि है।

जैसे पहले उसने जाना कि प्रकाश (ईश्वर) मेरे भीतर है उसी तरह अब उसने जाना कि मैं (प्रकाश) ईश्वर के भीतर हूँ। और यही वह दूसरी बात है जो हमारे गुरूजन हमें इस लिये नहीं बताते क्योंकि हम पहली बात पर ही यकीं नहीं करते।

साधक को अभी और आगे जाना है इस लिये उसे अभी भी साधना में लगे रहना होगा। धीरे धीरे साधक यह जानने लगता है कि ब्राह्मांड में विश्व जैसी, संसार जैसी, शरीर जैसी, पदार्थ जैसी कोई चीज़ है ही नहीं सिर्फ प्रकाश ही प्रकाश है सिर्फ ईश्वर ही ईश्वर है, क्योंकि सब प्रकाश है तो अन्धेरा-अन्धेरा तो होता ही नहीं है, कहीं भी नहीं है अन्धेरा। अन्धेरा तो सिर्फ मेरी अज्ञानता थी वर्ना यहां तो सब प्रकाश ही प्रकाश है।

मैं खुद भी उसी महांप्रकाश का हिस्सा हूँ यानि मैं खुद भी प्रकाश ही हूँ। न मेरा कोई शरीर है न कोई पाँच तत्वों का आकार है। मेरा तो कोई वजूद ही नहीं है मैं तो उसी प्रकाश का हिस्सा हूँ बल्कि मैं खुद प्रकाश हूँ सब तरफ मैं ही मैं हूँ यहां, वहां, और वहां-

मैं और प्रकाश कोई दो नहीं है एक ही हैं और यही अन्तिम जानने योग्य बात है। इसी बात की जानकारी हमें कर्म बन्धन से छुड़ाती है। यही हमें सम्पूर्ण स्वतन्त्रता दिलाती है।

अक्सर साधक शुरू में जो कहता है कि मैंने ईश्वर को प्राप्त करना है ईश्वर दर्शन करना है अगर वह साधक साधना की इस तीसरी मंजिल पर पहुँच जाता है वह खुद का दर्शन कर पाता है खुद की जानकारी हासिल कर पाता है तो वह कह सकता है कि मैंने ईश्वर दर्शन कर लिया क्योंकि खुद को जान लेना ही ईश्वर दर्शन है।

ध्यान के लाभ–

आज का युग कुछ ऐसे दौर से गुज़र रहा है जब मानव बहुत ज्यादा लाभ के प्रति लालायित रहने लगा है। (Profit Concious) किसी भी काम को करने से पहले सोचता है इसका लाभ क्या है और जो प्रकट में (Apparent Profit) लाभ है उसे ही लाभ मानता है।पहली बात तो यह कि इस कार्य में हानि कोई नहीं। दूसरी बात इस में न सिर्फ प्रकट रूप में लाभ होता है बल्कि बहुत सारा अप्रकट रूप में भी लाभ होता है।प्रकट रूप में शारीरिक तन्दरुस्ती अथवा अच्छी सेहत प्राप्त होती है साथ ही साथ बुद्धि में भी तीक्षणता आती है। मन में आनन्द रहता है कि जिसके कारण व्यवहार में पवित्रता आने से एक सुसंस्कारित चरित्र व यश की प्राप्ति होती है। साथ ही साथ मनुष्य दूसरे लोगों के प्रेम व आकर्षण का केन्द्र भी बनता है। अप्रकट रूप में मनुष्य जिस वस्तु की ग्रन्थों में पढ़ कर एक असंभव प्राप्ति समझता है वही वस्तु उसे कब प्राप्त हो जाती है इसका उसे खुद भी पता नहीं चलता। इसे मोक्ष या मोक्ष की प्राप्ति कहते हैं।

कोई भी साधक जब साधना की इस मंजिल पर पहुँचता है, जब वह महसूस करता है कि मैं और प्रकाश (ईश्वर) दोनों एक ही हैं वस्तुत: दो नहीं एक ही है तब वह उस मन्त्र को खुद व खुद प्राप्त कर लेता है। सोहं, सोहं जिसे अजपा जाप अथवा मन्त्र भी कहते हैं फिर वह महसूस करता है कि जिसे उसके न जपने पर और न बोलने पर भी खुद ही जपा अथवा बोला जा रहा है साथ ही साथ एक एहसास यह भी पनपने लगता हैकि यह जाप या मन्त्र जिसके बारे उसे साधना की लम्बी प्रक्रिया के बाद पता चला, वास्तव में यह तो उसके इस पंच भूतीय शरीर के पैदा होने के साथ ही शुरू हो गया था। और एक और जो विशेष बात की जानकारी होती है कि यह जाप तब भी चलता रहता अगर उसे इसकी जानकारी न भी हो पाती लेकिन पता लग जाने पर उसे जो लाभ होने वाले हैं उनसे वंचित रह जाता। पहला लाभ तो बिल्कुल उसी प्रकार है कि जैसे किसी की जेब में 100 रु० का नोट हो और उसे इसकी खबर न हो। और जब कभी एक दो रूपये की ज़रूरत पड़ो तो वह दूसरे से भीख अथवा कर्ज़ मांगने लगे। दूसरा लाभ यह कि उसे इस बात की जानकारी होने लगती है कि यह अजपा जाप सृष्टि के हर प्राणी द्वारा जपा जा रहा है और जो शक्ति इस मन्त्र को उसके अपने भीतर चला रही है वही शक्ति दूसरे के भीतर भी इसी मन्त्र को चला रही है और इस

तरह वह अद्वैत के एक बेहतर स्वरूप को समझने लग पड़ता है। वह जान पाता है कि जिस शक्ति से वह भीतर से जुड़ा हुआ है बिल्कुल उसी शक्ति से सृष्टि का हर दूसरा प्राणी जुड़ा हुआ है और इस विचार पर दृढ़ होने लगता है कि बेशक ऊपरी सतह पर सभी प्राणी जीव, जन्तु, मानव अलग-अलग नज़र आ रहे हैं लेकिन भीतर से सभी एक ही हैं।

इसके लिये हम एक पेड़ की उदाहरण लेते हैं।

पेड़ के ऊपर असंख्य पत्ते लगे रहते हैं। अचानक एक पत्ते में ऐसा विवेक बन जाता है कि मैं अपने आप में कुछ चीज़ हूं। समय के साथ साथ यही हालत वृक्ष के हर पत्ते की होने लगती है। हरेक का अपना अहं जाग उठता है। एक बार ऐसा ही होता है वृक्ष के हर पत्ते का अहं इतना बढ़ गया कि सभी एक दूसरे से झगड़ने लगे सभी वृक्ष पर अपना-अपना अधिकार बताने लगे। हर पत्ता दूसरे को यह जताने लगा कि मेरी वृक्ष के साथ ज्यादा नज़दीकी है। इस तरह उन में काफी विवाद खड़ा हो गया। तब एक दिन वहां पर एक सन्त जो उस रास्ते से गुज़र रहे थे, थोड़ी देर विश्राम के लिये उस वृक्ष के नीचे बैठ गये। कुछ ही देर में उनके कानों में उन पत्तों के झगड़ने के स्वर सुनाई पड़े। सन्त एक ही क्षण में सारा मामला समझ गये। उन्होंने अपनी दिव्य दृष्टि से यह भी देखा कि ऐसा ही झगड़ा इर्द गिर्द. के सभी वृक्षों के पत्तों के बीच चल रहा है। इसी बीच उन पत्तों ने भी उन महान सन्त को देख लिया और उनमें से कुछ उनके आगे प्रार्थना करने लगे कि हे ऋषिवर अगर हो सके तो आप ही हमें कुछ रास्ता बतायें। ऋषिवर तो सर्वज्ञ थे वो जानते थे कि इनका समाधान क्या होना चाहिये। वे जानते थे कि सिर्फ अद्वैत का बोध (कि तुम सब एक ही हो) ही इनका सही समाधान है। उन्होंने एक ही टहनी के पत्तों को समझाना शुरू किया। उन्होंने कहा कि तुम सब अपने-अपने सिर के ऊपर हाथ रखो और अपनी-2 चोटी पकड़ लो (चोटी का मतलब डण्डी जिससे पत्ता टहनी से जुड़ा रहता है) सभी पत्ते हैरान हो गये कि उन सब के सिर एक ही टहनों से जुड़े हुये हैं, ऋषि उनको और समझाते हुये कहने लगे कि अगर आप थोड़ा ध्यान से देखो तो जिस टहनी से आप जुड़े हुये हैं वह आगे एक तने से जुड़ी हुई और इस जैसी अनगिनत टहनियां उसी तने से जुड़ी है अत: वे सभी पत्ते एक तने से जुड़े हुये हैं और यह बड़ा तना धरती से जुड़ा हुआ है इस तरह आप सभी पत्ते एक ही धरती से जुड़े हुये हैं और यही हाल बाकी सभी वृक्षों के पत्तों

का है, वे सभी भी एक ही धरती से जुड़े हुये हैं। अतः हर वृक्ष का हरेक पत्ता सिर्फ एक ही धरती से जुड़ा हुआ है। धरती हरेक पत्ते में समान रूप से समाई हुयी है। जीव, 'पत्ता' है और धरती ब्रह्म है, एक-एक पत्ता एक-एक जीव है, और हर जीव धरती मतलब 'ब्रह्म' से ही जुड़ा हुआ है जुड़ा हुआ है तो जीवित है। जैसे ही टूटता है मृत है। हर पत्ते में धरती का अंश है, हर पत्ता धरती का ही अंश है, हर पत्ता धरती ही है धरती ही पत्ता है। हर जीव में ब्रह्म है, हर जीव में ब्रह्म का ही अंश है, हर जीव ब्रह्म ही है, ब्रह्म ही जीव है।

लेनिक इन सब बातों का एहसास सिर्फ उसी साधक को होता है जो साधना के तीसरे चरण को प्राप्त कर लेता है।

वह जान लेता है कि मैं उस पर ब्रह्म परमात्मा से जुड़ा हुआ हूँ उससे भिन्न नहीं हूँ अतः मैं भी ब्रह्म हूँ जैसे एक कुआं यह जान जाये कि उसके भीतर जो जल है वो भीतर से जो धरती के नीचे अदृश्य सागर है उससे जुड़ा है और उसका यह जल उस सागर का ही जल है अतः मैं कोई एक छोटा अथवा साधारण सा कुआं नहीं मैं तो वही सागर या महांसागर हूँ।

साधना के इस तीसरे चरण की प्राप्ति के बाद जब साधक यह जान लेता है कि सो-हम-मैं वही हूँ तो वह एक परम शान्ति को प्राप्त होता है उसकी हर जिज्ञासा मिटने लगती है वह एक परम आनन्द की हालत में आने लगता है। जैसे कोई नदी जब तक सागर में दाखिल नहीं होती दौड़ती अथवा चलती नज़र आती हैं। उसका एक अलग वजूद नज़र आता है लेकिन जैसे ही सागर में प्रवेश कर जाती हैं उसकी अलग पहचान कोई अलग वजूद कोई अलग नाम कोई रूप कुछ नहीं रह जाता, बस सागर ही बन जाती है, उसकी तमाम कोशिश, दौड़ धूप, तमाम जिज्ञासा समाप्त हो जाती है और चिर शान्ति को प्राप्त होती है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

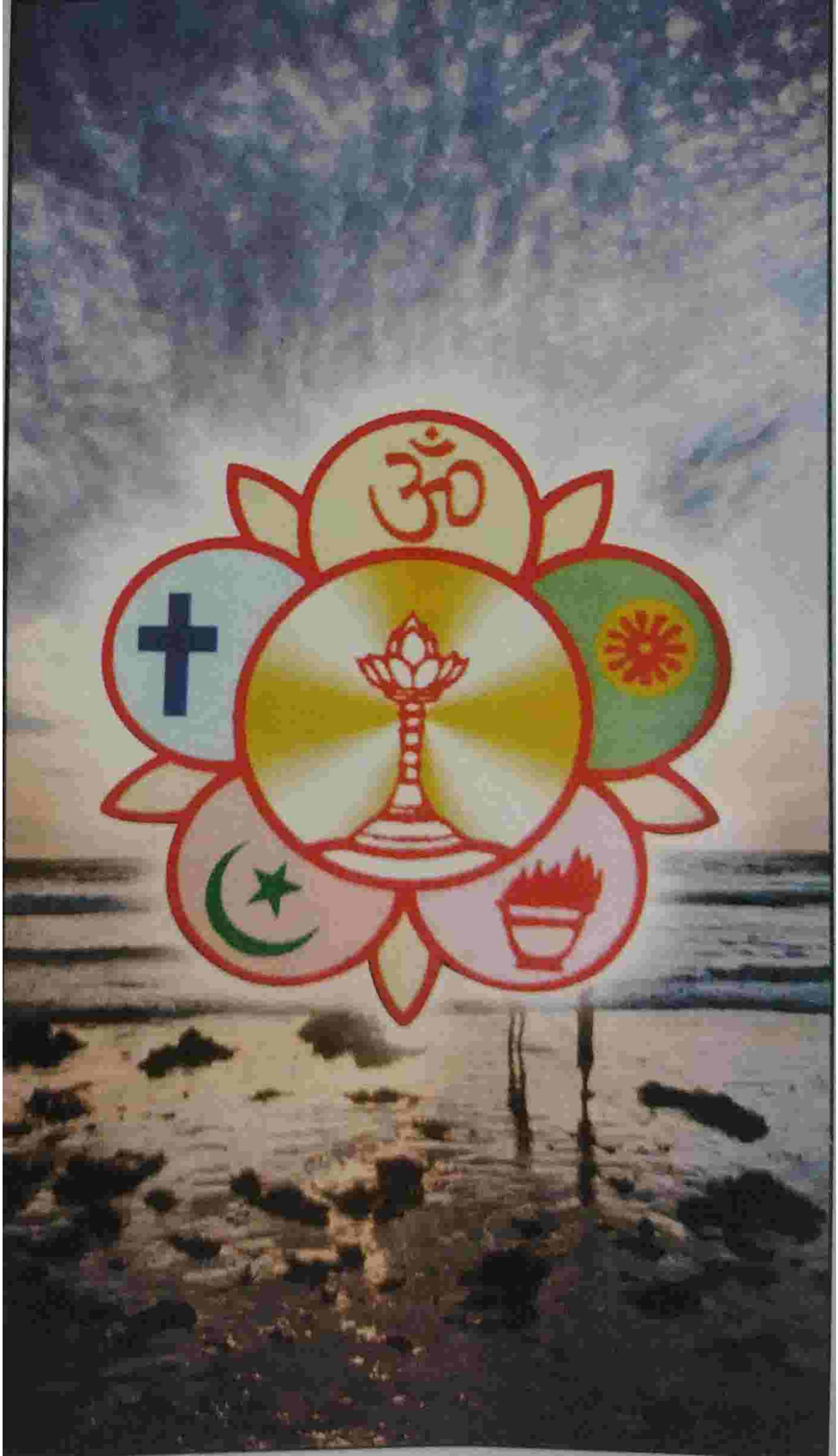
ॐ